श्रीवीतरागाय नम



धन्यकुमारचरित्र

(भाषानुवाद)

—oo✕oo—

बड़नगर निवासी

श्री उदयलाल काशलीवाल द्वारा

अनुवादित.

-और-

मैनेजर, जैन भारती भवन द्वारा

प्रकाशित ।

——:o:——

पहला संस्करण } १००० } श्री वीर-निर्वाण सं. २४३७ ई. सन् १९११. { न्योछावर { ।।।)

हा ! हा ! ! गतः क्व खलु शेखरचन्द्र ! मित्र !

जीवन !

प्यारे हृदय कुमुदचन्द्र—शेखरचन्द ! आज का दिन हम लोगों के लिये बड़ा ही दारुण और अमङ्गल है। जिस बात का स्वप्न में भी अरमान नहीं था वही बात आज आंखों के सामने आ उपस्थित हुई। सब आशालताओं पर एक दम ही पानी फिर गया। कौन जानता था कि काल की निर्दयता का प्रहार हम लोगों पर ही होगा। वह बड़ा ही पश्यतोहर है। यही कारण है जो उसे हम लोगों का प्रेम-अलौकिक प्रेम सहन नहीं हुआ और आंखों के देखते २ हृदय के एक टुकड़े को जबरजस्ती छीन ले गया। जीवन-सर्वस्व ! आप तो स्वर्ग का सुख अनुभव करने लगे अब क्योंकर हमारी आपको याद आवेगी ? सुख छोड़ कर कोन दुःखी बनना चाहेगा ? प्यारे ! हम लोग अब किसे अपने सुख दुःख का साथी बनावेंगे ?

आप इस संसार में हमारे जीवन के स्तंभ थे परन्तु आज प्रलय काल की आंधी ने-नहीं, हमारे खोटे भाग्य ने उसे गिरा दिया। अब हम किस के सहारे पीछे उठने का साहस करेंगे ? जीवन ! आप तो सदा के लिये हम से जुदा होकर अनन्त धाम के लिये प्रयाण यात्रा कर गये और हमें दुःख समुद्र में डुबो कर यहीं छोड़ गये। क्या यही आप को उचित था ? अच्छा, हृदय हार ! यदि आप की यही इच्छा है तो जाइये आप की इच्छा के हम कण्टक नहीं हैं परन्तु देखना इन अनन्य भक्तों को कहीं भूल न जाना ? यह प्रार्थना है।

पूज्यपाद ! इस वक्त हमारे पास ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो आपकी चिरस्मृति के लिये सहायक हो। किन्तु यह एक छोटासा अनुवादित ग्रन्थ है। आज इसे ही आपके पदपङ्कजों में समर्पण करते हैं और यह प्रतिज्ञा करते हैं कि यदि जीवन रहेगा तो कोई एक स्वतंत्र ग्रन्थ आप की भेट कर अपने कर्त्तव्य को पूरा करेंगे ! ईश्वर आपकी आत्मा को शान्ति सुख प्रदान करे।

आसोज शुक्ल २
वी० नि० २४३७
काशी

आपके—
वियोग से पीड़ित-हृदय-
कुमारैय्या उदयलाल.

प्रस्तावना.

पाठक महाशय !

धन्यकुमार चरित्र का—अनुवाद लेकर आपके सामने उपस्थित होते हैं। इसके कर्त्ता हैं श्री सकलकीर्त्ति भट्टारक। आपका बनाया हुआ संस्कृत साहित्य बहुत है। जैन समाज का आप के द्वारा बड़ाभारी उपकार हुआ है। आप की संस्कृत लिखने की शैली बड़ी ही सरल और साधारण बोधवाले के लिये बड़ी उपयोगी है। आपका विशेष परिचय बताने के लिये अभी हमारे पास समय नहीं है। इस लिये पाठकों से इस की बाबत क्षमा चाहते हैं। हो सका तो द्वितीय संस्करण में बताने की कोशिश की जावेगी।

धन्यकुमार चरित्र प्रथमानुयोग का ग्रन्थ है। यद्यपि इस में जगह २ प्रसंगानुसार सब तरह की शिक्षा दी गई है परन्तु प्रधानता से इस का उद्देश्य दान की ओर प्रवृति कराने वाला समझना चाहिये। हमारा जैन समाज दान के विषय को बहुत कुछ भूल गया है सो उसी विषय के सुझाने के लिये इस चरित्र का अनुवाद किया गया है। जिस कारण से पहले जैन समाज का सिंहासन संसार में सब से ऊंचा था उसी के आज बिल्कुल रसातल में पहुंच जाने से यह नहीं कहा जा सकता कि जैन समाज पहले की अपेक्षा अब कृपण हो गया है। नहीं, यह बात तो जैन समाज में आज भी इतने ऊंचे दरजे की है कि वह प्रतिष्ठादि कार्यों में रुपये को पानी की तरह बहा देता है। मैं इस विषय का निषेध करना नहीं चाहता किन्तु समाज का इतना ध्यान जरूर आकर्षित करना चाहता हूं कि वह जरूरी विषय पर भी ध्यान दे। आज संसार की सब जातियें दिनों दिन उन्नति के रास्ते पर आगे २ बढ़ी चली जा रही हैं परन्तु जैन समाज उल्टा दिनों दिन पीछा पड़ रहा है इसका कारण यही कहा जा सकता है कि हम लोग सीधे मार्ग पर न चलकर उल्टे रास्ते पर जा रहे हैं। हमें अपने पूर्वजों की कीर्त्ति का स्मरण करना चाहिये। उनके वक्त में जैन समाज किस दशा में था

और आज किस दशा में है। सन्तान तो हम भी उन्हीं की हैं परन्तु उन में और हम में जमीन असमान का अन्तर है। उन की अपेक्षा हमारी आत्मायें बड़ी ही निर्बल और भीरु हैं। यही कारण है जो हमें अपने को सब के आगे करने का साहस नहीं होता। हम लोगों में पुरुषार्थ नहीं, विद्या नहीं, एक्यता नहीं फिर क्यों न हम अधः पतन के पात्र हों। हमें अपने दुर्लभ जीवन पर विचार करना चाहिये। मानव जीवन सब के लिये सहज नहीं है। इसके लिये बड़े २ पुण्य और तपश्चरण की जरूरत पड़ती है। एक नीतिकार ने लिखा है—

नरत्वं दुर्लभं जन्तोर्भ्रमतोऽस्य भवार्णवे।
सिकताजलधौ भ्रष्टं वज्रवत्पारवर्जिते॥

इस से यह सिद्ध होगया कि मानव जीवन बहुत दुर्लभ है तो फिर हमें क्यों नहिं यह बुद्धि पैदा होती जिसके द्वारा अपने दुर्लभ जीवन के सार्थक बनाने का उपाय सोचे? क्यों न दिल में यह उदारता प्रगट होती कि हमारे द्वारा दूसरे का कुछ भला हो? हो कहां से? यह तो हम पहिले ही लिख चुके हैं कि हममें ज्ञान नहीं फिर अच्छे विचार दिल में क्योंकर उदय हो सकते हैं? और ज्ञान का अच्छे विचार से बहुत कुछ घनिष्ठ साथ है। हमें जरूरत है कि हम अपनी जाति को शिक्षित बनाने के लिये ज्ञान दान देने का उपाय करें। क्योंकि इस समय हमें शिक्षित होने की बहुत कुछ जरूरत है। यदि हम उन्नति के मार्ग पर चल सकते हैं तो उस के लिये सब से पहिला उपाय ज्ञान प्राप्त करना है। इस के द्वारा हम अपने इच्छित को देखते २ हस्तगत कर सकेंगे। मनुष्य जीवन का सब से पहिला यह उद्देश्य है कि स्वयं ज्ञानी हो कर संसार मात्र के जीवों को ज्ञानी बनाने का उपाय करें। इसी उद्देश्य का हमारे पूज्य तीर्थंकर परम महात्माओं ने अच्छी तरह पालन किया है इसी से आज उन का नाम हमारे लिये प्रातः स्मरणीय है और आ संसार तक रहेगा। हम भी उन्हीं के वंश में हैं फिर क्यों न हम उन के सरीखा कार्य कर संसार में अपना मुख उज्वल करें। हमारा जीवन तभी सार्थक कहा जा सकेगा जब कि—

गुरून्कुर्वन्ति ये वंश्यान्नन्वर्था तैर्वसुन्धरा।
येषां यशांसि शुभ्राणि ह्रेपयन्तीन्दुमण्डलम्॥

इस श्लोक के चरितार्थ करने में अग्रसर होंगे। जीना और मरणा सभी के पीछे लगा हुआ है उन लोगों के पैदा होने से संसार का कुछ भला नहीं हो सकता जो केवल अपना ही पेट भरना जानते हैं उन्हें पृथ्वी का बोझा समझना चाहिये। कहना यह है कि हमारा समाज शिक्षा में सब से बहुत कुछ पीछे है। शिक्षा दान की बड़ी भारी जरूरत है इस लिये शिक्षा प्रचार का उपाय करना चाहिये। क्योंकि—

" ज्ञान बिना सब निस्फल जानो,,

एक बात और कहना है-धन्यकुमार चरित्र में ज्ञान दान गौण कर और २ विषय पर बहुत जोर दिया गया है। वह एक तरह ठीक भी है कारण जब धन्यकुमार इस संसार में मौजूद था उस वक्त हमारा समाज भी ज्ञान से भरपूर था। खास तीर्थंकर श्री वर्द्धमान भगवान मौजूद थे तब यह कहने की जरूरत न थी कि हमारे समाज में ज्ञान की जरूरत है। यही कारण है जो इस चरित्र में ज्ञान दान का जिकर बहुत ही कम आया है। परन्तु अब हमारे लिये महावीर स्वामी का समय नहीं है। इसी से यह कहना पड़ता है कि विचार और जरूरत के अनुसार धन के खर्च करने की जरूरत है। इस लिये पाठकों से हमारा अनुरोध ज्ञान दान की ओर ज्यादे है। ज्ञान के न होने से हम बहुत कुछ गिर गये हैं। ऐसे वक्त में हमारे लिये सहारे की जरूरत है जो उठा सके। वह सहारा ज्ञान है। यदि उठ सकेंगे तो इसी के द्वारा नहीं तो नाम शेष होना तो जरूरी है।

ऋषि, महर्षि और महात्माओं की सन्तानों ! उठो !! आंख खोल कर देखो !!! अब तुम्हें जागना चाहिये। तुम्हारे पीछे २ के सब लोग जाग कर उठ चुके हैं अब सोने का समय नहिं रहा। कार्य क्षेत्र में उतरो और गिरी हुई जाति के उठाने के लिये सहारा दो ! इसी लिये संसार में तुम्हारा जीवन हुआ है न कि पृथ्वी के कम्पित करने को। जाति के उन बाल बच्चों की दशा देखो जो बिना ज्ञान के इधर उधर ठोकरों से ठुकराते फिरते हैं। उन्हें कौड़ी के भाव भी कोई नहीं पूछता। यह कभी मत समझो कि उन का उत्तर दायित्व किसी और पर है। हम तुम सब एक की सन्तान हैं, एक के उपासक हैं

और एक ही के द्वारा अपने भले होने की आशा रखते हैं। ऐसी हालत में तुम्हें सब पर समान भाव रखना चाहिये। उन के दुःख में दुःखी और सुख में सुखी होना चाहिये। समझो। विचार करो !! और—

> परिवर्त्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते।
> स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम् ॥

इस श्लोक को हृदय पट पर अङ्कित करो जिस से संसार में मनुष्य श्रेणी में गिने जा सको और लोग तुम्हारा आराधन करने लगे।

अनुवाद का यह तीसरा ग्रन्थ है संभव है इसमें भी अशुद्धियें रही होंगी। कारण भूल होना मनुष्यों के लिये साधारण बात है। इस लिये पाठकों से क्षमा की प्रार्थना कर विराम लेते हैं।

बड़नगर (मालवा) } जाति का दास—
उदयलाल कासलीवाल



ॐ नमः सिद्धेभ्यः



श्रीधन्यकुमारचरित्र ।

(भाषानुवाद)

श्रीशोभित तुव वदनशशि हरै जगतजन ताप ।
इह कारण पदपद्म तुव नमहुं नाथ ! गतपाप ॥
शिव सुखदायक आपको कहैं जगतमें लोक ।
क्यों न हरौ भव-गहनवनभ्रमणं नाथ ! हे शोक ॥
अखिल अमित भूलोकमें तुम सम नहीं दयाल ।
दयापात्र फिर क्यों न मैं ? विभो ! दीनजनपाल ! ॥
आँनदकन्द जिनेश ! अब गह करके मम हाथ ।
अतिगँभीर जगजलधिसे करौ पार जननाथ ! ॥
सकलकीर्त्ति मुनिराजने संस्कृतमें सुविशाल ।
विरचौ धन्यकुमारको चरित अमितगुणमाल ॥
तिहिं भाषा मैं अल्पधी लिखूं स्वपर सुख हेतु ।
इस महानं शुभकार्यमें नाथ ! बनहु सुखसेतु ॥

ग्रन्थारम्भ ।

गर्भकल्याण, जन्मकल्याण, दीक्षाकल्याण, ज्ञान-कल्याण और निर्वाणकल्याणके अनुभोक्ता, त्रिभुवनके

स्वामी, शिवरमणीके नाथ तथा गुणोंके समुद्र श्रीवर्द्ध-मान जिनभगवानके लिये मैं नमस्कार करता हूं ॥१॥

अन्तरंग तथा बहिरंग लक्ष्मीसे विभूषित, आरंभमें धर्मतीर्थके प्रवर्त्तन करने वाले, धर्मके स्वामी तथा अनन्त गुणोंके आकर श्रीवृषभनाथ भगवानके लिये मैं नमस्कार करता हूं ॥ २ ॥

सम्पूर्ण मङ्गलके करने वाले, लोकश्रेष्ठ, सज्जन पुरुषोंके लिये आश्रयस्थान तथा जगतके हित करने वाले शेष समस्त तीर्थंकरोंको मैं नमस्कार करता हूं ॥३॥

मनुष्य देव और विद्याधरोंके अधिपति तथा गणधरादिसे विशोभित, ढाईद्वीपमें विहार करने वाले जो श्रीसीमन्धर स्वामी प्रभृति मोक्षमार्गके प्रकाश करने वाले बीस तीर्थंकर हैं उन्हें विनत मस्तकसे मैं नमस्कार करता हूं ॥ ४ ॥ ५ ॥

ये उपर्युक्त तीर्थंकर तथा और जो त्रिकालमें होने वाले हैं। मेरे द्वारा नमस्कार तथा स्तवन किये हुये वे सब मेरे आरम्भ किये हुये कामकी सिद्धिके लिये हों ॥६॥

ज्ञानावरणादि आठकर्म तथा शरीरसे विरहित, सम्यक्त्वादि आठ महागुणोंसे विभूषित, तीन लोकके शिखर पर अवरूढ, इन्द्र धरणेन्द्र चक्रवर्त्ती आदिसे

नमस्कार किये हुये, अनन्त गुणोंके स्थान तथा उत्तम गुणोंकी अभिलापा करने वाले भव्य पुरुषोंके द्वारा ध्यान करने योग्य सिद्धभगवानका मैं प्रतिदिन स्मरण करता हूं ॥ ७ ॥ ८ ॥

छत्तीस गुणविराजमान, दर्शनाचार ज्ञानाचारादि प्रभृति पञ्चाचारके परिपालन करनेमें तत्पर, त्रिभुवनके द्वारा अभिवन्द्यनीय तथा शिष्योंपर दया करने वाले आचार्योंके लिये मैं अभिवन्दन करता हूं ॥९॥

जो अपने जन्म रूप आतापके नाश करने के लिये अंग पूर्व रूप पीयूषरसका स्वयं पाने करते हैं तथा और भव्य जीवोंको पिलाते हैं ऐसे उपाध्यायोंका अपने आत्मस्वरूपकी समुपलब्धिके लिये स्तवन करता हूं॥१०॥

जो अखण्ड रत्नत्रय तथा आश्चर्य जनक योगका त्रिकाल साधन करते हैं वे साधुराज शिव प्राप्तिके लिये मुझे शक्ति प्रदान करें ॥११॥

सम्पूर्ण ऋद्धि तथा मतिज्ञान श्रुतिज्ञान अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञानसे विभूषित, गुणोंके समुद्र, त्रिभुवनाधिपतिसे वंद्यनीय तथा पूज्यनीय और सम्पूर्ण अङ्गोंकी रचना करनेमें सुचतुर वृषभसेन प्रभृति गौतम-गणधर पर्यंत सर्व गणधरादि मेरे द्वारा स्तवन किये अपनी २ बुद्धिके प्रदान करने वाले हों ॥ १२ ॥ १३ ॥

सम्पूर्ण सिद्धान्त रूप नीराधिके पारको प्राप्त हुये, सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र रूप अनर्घ्य रत्नसे अलंकृत, परिग्रह रहित, तथा दिशा रूप वस्त्रके धारण करने वाले ओर कितने कुन्दकुन्दादि विद्वान कविराज इस संसारमें प्रसिद्ध हुये हैं। तथा गुणोंसे गुरुत्व पदको धारण करने वाले हैं। उन सब उत्तम २ महात्माओंका मैं स्तवन करता हूं ॥ १४ ॥ १५ ॥

ग्यारा अङ्ग चतुर्दश पूर्व तथा प्रकीर्ण रूप शरीरके धारण करने वाली, सम्यग्दर्शनादि रत्नालंकारसे विराजित, सप्ततत्त्व नव पदार्थके वर्णनसे युक्त, अनन्त सुखकी देने वाली, गुणोंसे विभूषित, जिन भगवानके मुख कमलसे उत्पन्न तथा गणधरभगवानके द्वारा वृद्धिको प्राप्त भारती (सरस्वती)—मेरे द्वारा स्तवन की हुई तथा नमस्कार की हुई सर्वार्थसिद्धिके प्राप्तिकी कारण अथवा सम्पूर्ण अर्थकी सिद्धिके लिये हो ॥१६॥१७॥

बाह्य तथा अन्तरङ्ग परिग्रहसे विनिर्मुक्त, योग्य, उत्तम २ गुणोंसे विभूषित, सम्पूर्ण भव्य पुरुषोंके हित करनेमें तत्पर, संसार रूप समुद्रके पारको प्राप्त हुये तथा सम्पूर्ण अर्थकी सिद्धिके साधन करने वाले धन्यकुमार प्रमुख बाकी के सब योगिराजोंको उनके गुणोंकी समुपलब्धिके लिये स्तवन करता हूं ॥१८॥१९॥

इस प्रकार उत्तम २ मङ्गल करने वाले उत्कृष्ट तीर्थंकर भगवान, जिनवाणी तथा आचार्यादि साधुओं का स्तवन तथा अभिवन्दन करके मङ्गलासिद्धि, अपने आरम्भ किये हुये की सिद्धि, विघ्ननाश, मोक्षसम्प्राप्ति तथा कर्मनाश प्रभृति कार्योंकी सिद्धिके लिये अपने और दूसरों के हितकी इच्छासे—उत्तम वैश्यकुलदीपक तथा सर्वार्थ सिद्धिमें जाने वाले धन्यकुमारका शुभ और पवित्र चरित्र निर्माण करूंगा ॥ २० ॥ २२ ॥

जिसचरित्रके सुननेसे भव्य—पुरुषोंके राग रूप शत्रु तो नाश होंगे और संवेग तथा समाधि आदि गुणसमूह समुद्भूत होंगे ॥ २३ ॥

ग्रन्थकार कहते हैं कि मैं इस धन्यकुमारके चारित्र के द्वारा—स्वर्गकी सम्पदाके सुखका कारण, बडे २ उत्तम पात्रोंके दानका शुभ फल कीर्तन करूंगा ॥ २४ ॥

यही कारण है कि—धन्यकुमार केवल पात्रदानके फलसे राज्य सम्पदासे विराजित तथा स्वर्गकी लक्ष्मीका उपभोग करने वाला हुआ ॥ २५ ॥

इस विशाल वसुन्धरा मण्डल पर जम्बुवृक्षसे उप-लक्षित लाख योजन विस्तार वाला, तथा समुद्रसे वेष्टित गोलाकार जम्बूद्वीप है। उसके मध्यमें अत्यन्त मनोहर

लाख योजन ऊंचा और जिनमन्दिर देव तथा देवाङ्ग-नाओंसे शोभायमान सुवर्णमय सुमेरु शैल है ॥२७॥ उसके दक्षिण भागमें अतिशय सुन्दर तथा विद्याधर मनुष्य और देवताओंसे शोभायमान धनुषाकार उत्तम भरतक्षेत्र है ॥२८॥ उसके ठीक बीचमें अत्यन्त हृदयहारी, धर्मके सम्पादनका कारण, विद्वान तथा उत्तम २ कुलमें समुत्पन्न धर्मात्मा पुरुष तथा जिन भगवान आदिसे विभूषित आर्यखण्ड है ॥२९॥ उसमें उत्तम २ मनुष्योंसे पूर्ण, ग्राम, खेट तथा पुर आदिसे सुन्दर, स्वर्ग और मोक्षकी समुप-लब्धिका हेतु भूत अवन्ती नाम देश है ॥३०॥ जिसमें जगतके उपकार करने वाले आचार्य, उपाध्याय, साधु, गणधर तथा केवलज्ञानी ये सब अपनी २ विभूतिके साथ विहार करते हैं ॥३१॥ जहां—योगीन्द्र (साधु) जिनालय तथा धर्मात्माओंसे-पुर, पत्तन, खेट, ग्राम, गिरि तथा भुवनादि शोभायमान हैं ॥३२॥ जिस देशमें उत्पन्न हुये कितने बुद्धिमान पुरुष तो तपश्चरण द्वारा मोक्षका साधन करते हैं, कितने सर्वार्थसिद्धिका तथा कितने ग्रैवेयकादिका करते हैं ॥ ३३ ॥ कितने विचक्षण पुरुष सर्वज्ञभगवानकी परिचर्याके द्वारा सम्यग्दर्शन ग्रहण करते हैं, कितने इन्द्रपदको प्राप्त होते हैं तथा कितने दानके फलसे भोगभूमिमें जाते हैं ॥ ३४ ॥

जिस देशमें—सम्पूर्ण अभ्युदयका हेतुभूत श्रीजिनभगवानके द्वारा कहा हुआ धर्म श्रावक मुनि तथा सुचतुर पुरुषोंके द्वारा चलता है ॥ ३५ ॥ उसी धर्मके द्वारा अवन्ती निवासी भव्यपुरुष निरन्तर पद पदमें सुख, उत्तम २ वस्तु तथा सम्पतिको प्राप्त होते हैं ॥ ३६ ॥ जिस देशमें—धर्मात्मा पुरुष अपने अनुकूल आचार तथा गुणोंके द्वारा धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष तकका साधन करते हैं तो उस देशमें और २ सामान्य विषयके साधनकी हम कहांतक कहैं ? ॥३७॥ उसी अवन्ती देशके बीचमें नाभिकी समान सुविशाल-विद्वान, धर्मात्मा, उन्नत २ चैत्यालय तथा महोत्सवसे मनोहर उज्जयिनी नाम पुरी है ॥ ३८ ॥ वह-बड़े २ उन्नत गोपुर, प्राकार, खातिका तथा सुभटोंसे युक्तहोनेसे लोकमें अयोध्याके समान शत्रुओंसे अलङ्घनीय मालूम होती है ॥३९॥ जिस नगरी में—श्रावक तथा श्राविकाओंसे पूर्ण, जिन प्रतिमाओंसे सुन्दर ऊंचे २ जिन मन्दिर-वाद्य तथा धनवान लोगोंसे शोभायमान हैं ॥४०॥ जिसमें—धर्मात्मा पुरुष प्रातः कालही शय्यासे उठकर निरन्तर सामायक स्तवन तथा ध्यानादिसे उत्तम धर्मका सम्पादन करते रहते हैं ॥४१॥ और अपने गृहमें तथा जिनालयमें तीर्थंकर भगवानकी पूजन करके मध्यान्ह समयमें पात्र—दानके लिये

गृहद्वार पर साधुओंका समवलोकन करते रहते हैं ॥४२॥ तथा दिनभरमें उत्पन्न हुये पापकर्मोंके विनाशके लिये और शुभ कर्मकी समुपलब्धिके लिये शुद्धि पूर्वक सामायक तथा महामन्त्रका संचिन्तवन करते हैं ॥४३॥ इसी प्रकार और २ शुभाचरण व्रत तथा शीलादि पालन तथा पर्वतिथीमें उपवास पूजनादिके द्वारा पुरवासी लोग धर्मका सेवन करते हैं ॥ ४४ ॥ पश्चात् उसीके फलसे उन्हें इन्द्रियोंसे उत्पन्न होनेवाले सुख, भोगोपभोग सम्पत्ति, सुन्दर स्त्रियें तथा बालक अपनी इच्छाके अनुसार प्राप्त होते हैं ॥ ४५ ॥ अहो ! देवता लोग भी शिव सुखकी सम्प्राप्तिके लिये जिस उज्जयिनी पुरीमें अपने अवतार होनेकी इच्छा करते हैं अथवा और कोई ऊंचे पदकी प्राप्तिके लिये भी—तो उस पुरीका और क्या उत्तम कीर्त्तन होगा ? ॥ ४६ ॥ इत्यादि वर्णनसे उपलक्षित उज्जायिनी पुरीमें—प्रतापी, धर्मबुद्धि तथा धर्मात्माओंसे अत्यन्त अनुरागका करने वाला अवनिपाल नाम राजा है ॥४७॥ और सरल हृदय धनपाल नाम एक वैश्य रहता है । तथा शुभ २ लक्षणोंसे विराजित प्रभावती नाम उसकी भार्या है ॥४८॥ उन दोनोंके—परस्परमें अत्यन्त प्रेम करने वाले तथा गुण और सुन्दर २ लक्षणोंसे समान देवदत्त प्रभृति सात

पुत्र हुये ॥४९॥ उनमें कितने बालक तो अक्षराभ्यास करने लगे और बाकीके बड़े पुत्र धन सम्पादनके लिये व्यापार करने लगे ॥ ५० ॥

पश्चात् किसी दिन प्रभावती अन्तिम चतुर्थस्नान करके प्राणनाथके साथ २ शय्यामें सोई हुई थी सो उसने शुभोदयसे रात्रिके पिछले प्रहरमें अपने गृह-द्वारमें प्रवेश करते हुये उन्नत वृषभ, कल्पतरु तथा कान्तिशाली चन्द्रादि शुभ ग्रहोंको देखे । उसे स्वप्न देखनेसे बहुत आनन्द हुआ । बाद प्रातःकाल होतेही शय्यासे उठी और सब धार्मिक क्रियायें करके स्वामीके पास गई । और अपनी मधुर २ बाणीसे पुत्रके अभ्युदय सूचक देखे हुये शुभ स्वप्नोंको निवेदन किये ।

स्वप्नके सुननेसे धनपालको भी बहुत सन्तोष हुआ । बाद वह कहने लगा कि—प्रिये ! इन शुभ स्वप्नोंके फलसे तो मालूम होताहै कि—तुम्हें-दानी, ऐश्वर्यका उपभोग करने वाले, उत्तम वैश्यकुल रूप गगन मण्डलमें गमन करने वाला सूर्य तथा अपने सुन्दर २ गुण और उज्वल सुयशके द्वारा त्रिभुवनको धवलित करने वाले महान पुत्र—रत्नकी समुपलब्धि होगी। प्राणनाथके बचनोंसे प्रभावतीको ठीक वैसा ही आनन्द हुआ

जैसा खास पुत्रकी सम्प्राप्तिसे होता है। इसके बाद फिर गर्भके भी शुभचिह्न प्रगट दिखाई देने लगे और क्रमसे जब नव महीने पूर्ण हुये तब पुण्य कर्मके उदयसे प्रभावतीने—उत्तम दिन तथा शुभ मुहूर्त्तकी—आदिमें सुख पूर्वक-सुन्दरकान्तिके धारक, तेजस्वी, शुभलक्षण-मण्डित शरीरके धारक, सुभग तथा मनोहर रूपसे राजित उत्तम पुत्ररत्न उत्पन्न किया। पुत्र वास्तवमें पुण्य-शाली था जो उसकी नाल गाढ़नेके लिये जब पृथ्वी खोदी गई तब धनसे भरी हुई बड़ी भारी कढ़ाई निकली तथा इसीतरह जब उसके मज्जनके लियेभी खोदा गया तब भी पृथ्वीके भीतरसे धनका भरा हुआ दूसरा भाजन निकला। धनपाल इस आश्चर्यको देखकर उसीसमय राजाके पास दौड़ा गया और कहने लगा कि—विभो! मुझे उत्तम पुत्रकी प्राप्ति हुई है और साथ ही साथ बहुत धन भी मिला है। धन-पालके बचन सुनकर महाराज अवनिपाल बोले— श्रेष्ठिन्! जिस पुत्रके पुण्यसे वह धन निकला है उसका मालिक भी वही पुण्यशाली है। मुझे किसीके धनकी अभिलाषा नहीं है। महाराजकी इस प्रकार निस्पृहतासे धनपालको बहुत सन्तोष हुआ। बाद वहांसे गृहपर आकर सौध के जिनालयमें महाविभूति पूर्वक

समस्त कल्याणकर्मकी कारणभूत, विघ्नोंके नाश करने वाली जिन भगवानकी महापूजा की । नानाप्रकार दानादिसे अपने कुटुम्बीजनोंको तथा याचक लोगोंको सन्तोषित किये । और बन्धुओंके साथ २ गीत, नृत्य, वादित्र, ध्वजा, तोरणमाला प्रभृति महोत्सव पूर्वक पुत्रके उत्पन्न होनेका उत्सव किया॥ ५१॥६०॥ और फिर दशवें दिन बहुत धन खर्चकर सर्व जिन-चैत्यालयोंमें जिनेन्द्रकी पूजन की तथा बन्धु लोगोंको और याचक लोगोंको उनकी इच्छानुसार सन्तोषित किये।

बन्धुलोगोंने विचारा कि—अहो! इसी कुल-दीपक उत्तम पुत्रके उत्पन्न होनेका ही तो यह फल है जो हम आज धन्य तथा कृतार्थ हुये हैं। इसी विचारसे उन्होंने पुत्रका भी शुभ नाम धन्यकुमार ही रख दिया। पश्चात्—सुन्दर स्वरूपशाली, लोगोंके लोचनोंका प्रेम भाजन तथा अपने योग्य अलंकारोंसे अलंकृत धन्य-कुमार भी माता पितादि बन्धुओंको दुग्धपानादि सुम-धुर मधुर चेष्टाओंसे आनन्द देने लगा तथा बुद्धि, शरीर सौन्दर्यतादिसे दिनों दिन कुमुदबान्धवकी समान बढ़ने लगा। और धीरे २ मुग्धावस्थाको उल्लंघन कर कुमार अवस्थामें आया और मनोहर गुणोंके द्वारा देवकुमारके समान बढ़ने लगा ।

उससमय धनपालने—देव, शास्त्र तथा साधुओंकी भक्ति पूर्वक परिचर्या कर विद्या, कला, विज्ञान-प्रभृति गुणोंकी समुपलब्धिके लिये धन्यकुमारको उपाध्यायके पास महोत्सव पूर्वक पढ़नेको बैठाया। बुद्धिमान धन्यकुमार भी थोड़े ही समयमें उत्तम बुद्धि रूप नौकाके द्वारा शास्त्र-नीरधिके पार होगया। पश्चात् धीरे २ युवावस्थामें—अनेक शास्त्रोंका अनुभवी ज्ञान तथा कला कौशलका जानने वाला, विचारशील, उत्तम गुणोंका आश्रय, बुद्धिमान, सुयशसे सारे वसुन्धरा वलयमें प्रसिद्ध, शुभ लक्षणादिसे शोभित, सुन्दर शरीरका धारक, रूप लावण्य भूषण-वसन और पुष्पमालादि से विराजित होकर ऐसा शोभने लगा जैसा कामदेव श्रीके द्वारा शोभता है। धन्यकुमार इस अवस्थामें भी प्रमादी न होकर निरन्तर धर्म सम्पादनके लिये प्रचुर धन लगाकर देव गुरु सिद्धान्तकी परिचर्या किया करता था और शुभ भावोंसे अपनी इच्छानुसार दीन अनाथ लोगोंके लिये दयाबुद्धिसे दानादि दिया करता था। इसी तरह सम्पदाका उपभोग पूर्वक कुमार अवस्थाके योग्य सुखजनक भोगोंका अनुभव करते २ बहुत दिन बीते। निरन्तर इसी प्रकार लक्ष्मीके व्यय करनेकी उसकी उदारताको उसके भाई लोग सहन नहिं कर सके।

सो किसी दिन उन दुर्बुद्धियोंने अपनी मातासे कहा—देखो ! हम सब तो धन कमावैं और उसका खाने वाला यह केवल धन्यकुमार, जो कभी कुछ व्यापार नहिं करता है ?

प्रभावतीने—पुत्रोंकी रामकहानी अपने स्वामीसे कह सुनाई और साथमें कहा कि—देखो ! धन्यकुमार अब सब तरह सौभाग्य सम्पन्न होगया उसे आप व्यापारमें क्यों नहिं लगाते ? व्यापारके न करने ही से बड़े भाई उससे द्वेष करते रहते हैं । अपनी कान्ताके बचनानुसार धनपाल भी शुभ मुहूर्त्तमें सुपुत्र धन्यकुमारको किसीतरह बाजारमें लेगया और उसे सौ दीनारें देकर बोला—प्यारे ! यह द्रव्य लेओ । और इसके द्वारा-यदि कोई किसी वस्तुको बेचनेके लिये लावै तो तुम उसे खरीद लेना तथा उससे भी किसी और वस्तुको अच्छी देखकर खरीदना। सो इसीतरह जबतक भोजनका समय न आजावै तबतक व्यापार करते रहना फिर अन्तमें जो वस्तु खरीदी हो उसे नौकरके हाथसे उठवा कर भोजन करनेके लिये घर पर आजाना । इसप्रकार समझा कर धनपाल तो घर चला गया । और सरल हृदय तथा सौन्दर्यशाली धन्यकुमार नौकरके साथ साथ वहीं पर ठहरा । इतनेमें कोई पुरुष लकड़ीकी

भरी हुई एक उत्तम गाड़ी बेचनेके लिये वहीं पर लाया। धन्यकुमारने–पिताका दिया हुआ धन उसे देकर उससे वह गाड़ी खरीद ली। और फिर गाड़ीके द्वारा अपनी इच्छानुसार एक मैंढा मौल ले लिया। मैंढेको भी किसी दूसरेको देकर उससे चार खाटके पाये खरीद लिये। बाद अपने घर पर आगया। उस समय धन्य-कुमारकी माता बहुत–आनन्दित हुई और कहने लगी कि–अहो! आज पहलेही दिन मेरा पुत्र व्यापार करके आया है। इसलिये उत्सव करना चाहिये!

उधर वे आठ पुत्र देखकर कहने लगे कि–देखो! यह कितने आश्चर्यकी बात है जो आजही तो पिताजीने व्यापार करनेके लिये सो दीनारे दी थी और पहले ही दिन उन्हें खोकर चला आया तौ भी हमारी माता उत्सव कर रही है और हम लोग बहुत भी धन कमाकर लाते हैं फिर भी हमारे सामने तक न देखकर उल्टी उदासीन रहती है। अस्तु! इसमें इसका क्या दोष? किन्तु दोष है हमारे पूर्वोपार्जित कर्मोंका। पुत्रोंके बचनोंको सुनकर प्रभावतीने उन्हें हृदयमें रखलिये और फिर सब पुत्रोंके पहले ही धन्य-कुमारको भोजन कराकर स्वयं भी भोजन कर लिया। पश्चात्–एक बड़े भारी काष्ठके भाजनमें जल भरकर

प्रीतिपूर्वक अपनेही हाथसे खाटके पायोंको धोनें लगी। धोनेके साथ ही पायोंका कुछ भाग दूर जा गिरा। और शेषभागसे कुमारके प्रचुर पुण्योदयसे देदीप्यमान अनेक रत्न गिरने लगे और उसीमें एक व्यवस्था पत्र भी निकला। तो कदाचित् कोई कहै कि—ये खाटके पाये किसके हैं? यह पत्र किसने लिखा? तथा इसमें पत्र कैसे आया? इन सब प्रश्नोंका उत्तर नीचे लिखा जाताहै।

पहले इसी नगरीमें पुण्यशाली तथा महाधनी वसुमित्र नाम राजश्रेष्ठि होगया है। सो प्रचुर शुभोदयसे उसके यहां समस्त भोगोपभोग सम्पदाकी देने वाली नवनिधियें पैदा हुई थी। एक दिन वसुमित्रने उपवनमें आये हुये अवधिज्ञानी मुनिसे जाकर पूछा— विभो! आगे ऐसा कौन पुण्यात्मा नररत्न उत्पन्न होने वाला है जो इन नव निधियोंका स्वामी होगा? मुनिराजने- अवधिज्ञानके बलसे कहा--"महाराज अवनिपालकी उत्तम राजधानीमें धनपाल वैश्यका धन्यकुमार नाम पुत्र उत्पन्न होने वाला है सो वही पूर्वोपार्जित पुण्योदयसे इन निधियोंका भी स्वामी होगा और उसके द्वारा लोगोंको बहुत सुख सम्पत्ति प्राप्त होंगी,,। मुनिराज

के बचनोंको सुन कर वसुमित्र अपने घर गया और फिर मुनिराजके कथनानुसार यों व्यवस्था पत्र लिखा-

"श्रीमान् महामण्डलेश्वर महाराज अवनिपालके सुराज्यमें वैश्यकुलका उत्तम भूषण, धनी, भोगी तथा पुण्यशाली जो धन्यकुमार होने वाला है वही धन्यात्मा-मेरे गृहमें इस स्थानसे नव निधियों स्वीकार कर सुख पूर्वक यहीं पर रहै।,,

इस प्रकार पत्र लिखकर पत्रको उत्तम २ रत्नोंके साथ २ खाटके पायोंमें बन्दकर सुख पूर्वक रहने लगा। पश्चात् शेठ तो आयुके अवसान समयमें सल्लेखना पूर्वक प्राणोंको छोड़कर शुभोदयसे सुख निकेतन स्वर्गमें गया। शेठजीका स्वर्गवास होजाने बाद-विचारे शेष घरके लोग भी अशुभ कर्मोंदयसे मरकर कितने नरकमें, कितने अपने २ कर्मोंके अनुसार गतियोंमें गये। इनमें जो सबके पीछे मरा था उसे जलानेके लिये खाट सहित स्मशान भूमिमें लिवा ले गये। उन्हीं खाटके पायोंको शुभोदयसे धन्यकुमारने चाण्डालके हाथसे खरीदे। ग्रन्थकार कहते हैं कि-अहो! शुभ कर्महीं एक ऐसी वस्तु है जो नहिं प्राप्त होनेवाली, अत्यन्त दुर्लभ, बहुत दूरकी तथा बहुत धनके द्वारा मिलने वाली वस्तुको भी स्वयं मिला देता है।

धन्यकुमार को पत्र के बांचने से बहुत खुशी हुई। वह उसमें जैसा लिखा था उसी अनुसार निधियों के स्थानादिकों ठीक २ समझकर राजा के पास गया और उन से युक्ति पूर्वक गृह के लिये अभ्यर्थना की। तथा अपने शुभोदय से आज्ञा मिल जाने पर घरके भीतर गया और वहां निधियों को देखकर अत्यन्त आनंदित हुआ ॥१२२॥१२३॥ बाद उन उत्कृष्ट निधियों को अपने अधिकार में करके उन के द्वारा होने वाले अपरिमित धन का व्यवहार मनोभिलषित फलके देने वाली देव गुरु तथा शास्त्र की महापूजा में, सत्पात्रों के लिये पुण्य सम्पादन के कारण दान के देने में, दीन तथा अनाथों के लिये उनकी इच्छा के अनुसार दया दान करने में तथा प्रचुर विभूति से जिन धर्मियों का उपकार करने में करने लगा। इसी तरह धन्यकुमार थोड़े दिनों में राजमान्य होकर त्रिभुवन विस्तृत सुयश के द्वारा उत्पन्न होने वाले नाना प्रकार भोगों को भोगने लगा। धन्यकुमार अपने कुटुम्बी तथा और २ लोगों को भी बहुत प्रिय था। वह अपने शुभाचरण से धर्म सेवन करता हुआ सुखरूप पीयूष समुद्र में निमग्न होकर कौतुक से वीते हुये समय को न जानकर सुख पूर्वक रहने लगा ॥ १२४ ॥ १२८ ॥

अहो! धन्यकुमार अपने पूर्वोपार्जित पुण्य-कर्म के उदय से सर्वत्र आश्चर्य जनक भोग तथा सुख की सम्पादन करने वाली उत्तम सम्पत्ति नव निधियों को प्राप्त होकर मनुष्य तथा राजादि से मान्य सुख का सदैव उपभोग करता है। ऐसा समझकर जो पुरुष सुख के अभिलाषी हैं उन्हें चाहिये कि वे सदैव अपने पवित्र आचरणों से केवल एक पुण्य का उपार्जन करें॥ १२९॥ क्योंकि यही पुण्य पुण्य तथा गुणों का आलय है, पाप का नाश करने वाला है, पुण्य का बुद्धिमान लोग आश्रय करते हैं, पुण्य से समस्त सुख प्राप्त होते हैं, पुण्य की प्राप्ति के लिये ही पुण्य क्रियायें की जाती है, पुण्य से त्रिभुवन में होने वाली लक्ष्मी प्राप्त होती है, पुण्य के सम्पादन करने का बीज व्रत का धारण करना है इसलिये बुद्धिमानों! सुख की समुपलब्धि के लिये निरन्तर पुण्य के उपार्जन करने में चित्त लगाओ॥ १३०॥

इति श्रीसकलकीर्ति मुनिराज रचित धन्यकुमार चरित्र में
धन्यकुमार का जन्म तथा निधियों के लाभ का वर्णन
नाम पहला अधिकार समाप्त हुआ॥ १॥



द्वितीय अधिकार ।

जो धर्मके आदि प्रवर्तक हैं, जिन्हें त्रिभुवन वर्त्ति समस्त लोग नमस्कार करते हैं, सारे वसुन्धरा मंडल में जो उत्तम गिने जाते हैं, सज्जन पुरुषों के आश्रयाधार तथा अखिल संसार के जीवों का कल्याण करने वाले हैं उन श्री जिनेन्द्र का मैं स्तवन करता हूं।

एक दिन उज्जयिनी का ही रहने वाला कोई बुद्धिमान धन्यकुमार का कान्तिशाली सुन्दर रूप देखकर उसके पिता से बोला-धनपाल! रति के समान सुन्दर मेरी एक बाला है। मेरी इच्छा है कि मैं उसे धन्यकुमार के लिये विवाह दूँ, जिससे वह अपनी इच्छानुसार सुखोपभोग कर सके। उसके उत्तर में धनपाल ने कहा मैं तो इसे अच्छा नहीं समझता। आप को चाहिये कि हमसे भी जो ऐश्वर्यादि में बड़े हैं उनके लिये अपनी कन्या का संकल्प करें। उसने कहा आपने कहा सो ठीक है परन्तु मेरी यह इच्छा नहीं जो मैं उसे दूसरे के लिये देऊं। इसलिये मैंनें तो अपने हृदय में निश्चय कर लिया है कि जिस किसी समय देऊंगा तो धन्यकुमार ही के लिये देऊंगा। इसी तरह और भी कितने बडे २ धनिक लोग कहने लगे

कि हमभी अपनी कन्या का परिणय संस्कार धन्य-कुमार के साथ ही करेंगे औरों के साथ नहीं। इस प्रकार दिनो दिन बढ़ते हुये पुन्यशाली धन्यकुमार का अभ्युदय उसके बडे भाईयों को सहन नहीं हुआ सो उसके साथ ईर्षा करने लगे और साथही उसकी जीव-नयात्रा का नाम शेष करने के लिये संकल्प किया।

उधर विचारे धन्यकुमार को शुभकामों की ओर से बिल्कुल अवकाश नहीं मिलता था सो उसे यह कैसे मालूम हो सकता था कि मेरे उपर भाइयों के क्या २ षडयंत्र रचे जा रहे हैं। भावार्थ—भाइयों के दुष्ठ अभि-प्रायों को वह न जान सका। सो किसी दिन वे पापी लोग कुछ बिचार कर उपवनकी वापिकाओं में जल क्रीडा के लिये धन्यकुमार को लिवा ले गये। विचारा सरल हृदय धन्यकुमार वापिका के किनारे पर बैठकर प्रीतिपूर्वक उन लोगों की जल लीला देखने लगा। इतने में उसके भाइयों में से एक कुटल परिणामी पापीने पीछे से आकर और गला दवाकर उस विशुद्ध बुद्धि को वापिका में उलट दिया। धन्यकुमार पाप के उदय से वापिका के गहरे जलमें गिरा तो परन्तु गिरते २ भी उसे महा मंत्र का स्मरण हो आया। उन पापात्माओं को इतने पर भी जब सन्तोष न हुआ तब ऊपर से और भी

निर्दयता पूर्वक उसके किसी प्रकार न जीने की इच्छा से पत्थर फेंकने लगे। पश्चात यह समझ कर कि अब वह नियम से अपने जीवन का भाग पूरा कर चुका होगा सो इसी विश्वास से किसी प्रकार सन्तोष मानकर घरकी ओर लौट गये। ग्रन्थकार कहते हैं कि–

"संसार में ऐसा कोन बुरा काम है जिसे पापी लोग न करते हों किन्तु नियम से करते हैं"

उधर धन्यकुमार के बड़े भारी पुण्योदय से अथवा यों कहो कि महामंत्र की शक्ति से उसी समय जल देवता ने आकर धर्मात्मा कुमार को जल निकलने के द्वार से धीरे २ बाहर निकाल दिया। यह बात ठीक है कि जिन लोगों ने पहले पुण्य संचय कर रखा है उनके आधीन देवता स्वयं हो जाते हैं और आये हुये उपद्रवों का नाश कर उपकार करते हैं। इसी महामंत्र का ध्यान करने से जो शुभ कर्म का बन्ध होता है उससे दुष्टों के द्वारा किये हुये घोर उपद्रव सब नष्ट हो जाते हैं जिसप्रकार केसरी के द्वारा विचारे बड़े २ गजराज क्षणभर में नाम शेष हो जाते हैं। देखो! यह पुण्य ही का माहात्म्य है जो जलीय उपद्रव, स्थलीय उपद्रव, अकाल मृत्यु, चोर विभीषिका, राज विभीषिका आदि विघ्नजाल बहुत

जल्दी ही शान्त हो जाते हैं। इसी से तो कहते हैं कि जल, स्थल, दुर्ग, अटवी आदि जनित भयावस्था में तथा मृत्युकाल में भी केवल एक धर्म ही सहाई होता है। इसीलिये बुद्धिमानों को चाहिये कि आपत्ति के समय में वास्तविक बन्धु की तरह हित करने वाले तथा मरण प्रभृति अपाय के कारणों से रक्षा करने वाले धर्मका निरन्तर सम्पादन करैं।

इसके बाद पुण्यात्मा धन्यकुमार निर्विघ्न विना परिश्रम जल बाहर निकल कर अपने नगर की ओर चला और शहर के बाहर पहुंचकर विचारने लगा कि-देखो ! इस समय तो शुभोदय से मरते २ मैं किसी तरह बचा हूं यदि फिरभी उन लोगों का संग रहेगा तो नहीं मालूम क्या होगा ? इसलिये मुझें घरपर जाना योग्य नहीं है। क्योंकि संसार में बाह्य शत्रुओं का भय बना रहता है इसलिये वे छोड़े जा सकते हैं परन्तु घरका पुरुष यदि शत्रु होजाय तो बहुत बुरा होता है। (फिर उसमें बन्धुता का भाव नहीं रहता और फिर उसका पारिणाम भी यही होता है कि) जिस प्रकार कषायादि अभ्यन्तर शत्रु सहसा नहीं छोडे जा सकते उसी तरह उनलोगों का सम्बन्ध छूटना मुश्किल हो जाता है। इसप्रकार अपने शुद्ध मनमें विचार कर

धन्यकुमार वहीं से दूसरे देश की ओर चल दिया। चलते २ उसने किसी खेतमें एक किसान को हल हांकते हुये देखा और विचारा कि देखो ! मैंने अपनी लीला से कितनी कला कौशल विद्यायें सीखी हैं परन्तु यह तो कोई अपूर्व ही विद्या मालूम पड़ती है। इतना विचार कर किसान के पास गया और आश्चर्य से उसकी ओर अवलोकन करता हुआ वहीं पर बैठ गया ॥१८॥ कृषी नानाप्रकार के अलंकारों से भूषित इसका रूपातिशय देखकर बहुत आंश्चर्यान्वित हुआ और धन्यकुमार से बोला ॥२९॥ हे स्वामी ! मैं कुटुम्बी हूं कुछ शुद्ध दही और भात लाया हूं मुझपर अनुग्रह पूर्वक आप भोजन करें ॥ ३० ॥ हे चतुर ! भोजन करके मुझे और मेरी प्रार्थना को सफल करो। कृषी की प्रार्थना सुनकर धन्यकुमार ने उससे कहा यह बात मुझे स्वीकार है ॥३१॥ धन्यकुमार की स्वीकारता से सन्तोषित होकर कुटुम्बी उसे हलके पास बिठाकर आप पत्तों का पात्र बनाने के लिये पत्र लेने के लिये गया ॥ ३२॥ कृषी के चले जाने पर धन्यकुमार मुट्ठी से हल पकड़ कर अपनी इच्छानुसार सहर्ष कौतुक से बैलों को चलाने लगा ॥ ३४ ॥ उस समय हलके अग्रभाग से पृथ्वी का विदारण होते ही उसे सुवर्ण से भरा हुआ तांबे का

बड़ा भारी एक कलश दीख पड़ा॥३५॥ उसे देखकर धन्यकुमार हा! मेरे इस अपूर्व विज्ञानाभ्यास से पूरा पड़े ॥ ३६ ॥ यदि कुटुम्बी यह प्रचुर धन देखेगा तो प्रगट पने वहभी भाइयों के समान मेरे साथ बरताव करेगा ॥३७॥ इसप्रकार विचार करके द्रव्य के भय से डर कर धन्यकुमार कलश को उसी तरह रखकर और मिट्टी से उसे ढक कर बैठ गया ॥३८॥ इतने में कृषी भी पत्ते लाया और खड्डे में रखे हुये निर्मल जल का भरा हुआ कलश तथा दही और भात निकालकर जल से धन्यकुमार के चरणकमल तथा पत्ते धोकर पत्तों के भाजन में भोजन करने के लिये उसे बिठाया ॥४०॥

धन्यकुमार ने कृषी की प्रार्थना के अनुसार भोजन किया और बाद उससे राजगृह जाने का सुगम मार्ग पूछ कर उसी रास्ते से अपनी इच्छा के अनुसार चला गया ॥४१॥ धन्यकुमार के जाने बाद जब कृषी फिर हल चलाने लगा तब उसे वही धन दीख पड़ा। द्रव्य देखकर वह आश्चर्य के साथ विचारने लगा ॥ ४२ ॥ अहो! उस पुण्यशाली के शुभोदय से यह द्रव्य निकला है इसलिये मेरे स्वीकार करने योग्य नहीं है ॥ ४४ ॥ यही कारण है कि जो मूर्ख लोग लोभ से दूसरों का धन ले लेते हैं वे पाप के

उदय से अपनी लक्ष्मी का भी साथ में नाश कर जन्म २ में दरिद्री होते हैं ॥४५॥ इस प्रकार विचार कर दूसरों के धन में निस्पृह कुटुम्बी वह धन धन्यकुमार को देने के लिये उसके पीछे २ जल्दी जाने लगा ॥४६॥ धन्य-कुमार दूर से बुलाने वाले कुटुम्बी को आता हुआ देखकर एक वृक्ष के नीचे सुख पूर्वक बैठ गया ॥४७॥ इतने में कुटुम्बी धन्यकुमार के पास आकर तथा उसे नमस्कार करके बोला—हे नाथ ! अपना धन छोड़कर इस तरह इच्छा रहित क्यों चले आये ? ॥४८॥ कुटुम्बी के बचन सुनकर धन्यकुमार बोला भाई ! मैं क्या द्रव्य साथ में लेकर यहां आया था ? नहीं ! किन्तु उल्टा तुम्हीं ने तो मुझे दही तथा भात का भोजन कराया है फिर यह धन मेरा कहां से आया ? इसके उत्तर में अत्यन्त निर्लोभी और चतुर कुटुम्बी कहने लगा ॥ ४९ ॥ कुमार ! मेरे बचन सुनिये—पहले हमारे पितामह तथा पिता यह खेत अपने पुत्रों के साथ २ जोता करते थे तथा मैं भी हल चलाता था, परन्तु कभी धन नहीं निकला और तुम्हारे आनेपर आज शुभोदय से यह धन निकला है इस लिये निश्चय से यह धन तुम्हारा है क्योंकि हम सरीखे मन्द भाग्यों के लिये ऐसी सम्पत्ति कहां ? ॥ ५० ॥ ५२ ॥

कुटुम्बी के इस प्रकार बचन सुनकर धन्यकुमार बोला- अस्तु, यह मेरा ही धन रहै! मैंने तुम्हारे लिये दिया तुम प्रयत्नपूर्वक पुण्योपार्जन तथा सुखके लिये इसका उपभोग करो । विभो ! आपका मेरे ऊपर वडा भारी अनुग्रह है । इसप्रकार धन्यकुमार से कहकर कुटुम्बी फिर उसे मस्तक से प्रणाम कर यों कहने लगा ॥५३॥ हे नाथ ! मैं कुटुम्बी ग्राम में रहता हूं और मेरा नाम भी कुटुम्बी है । यदि किसी समय मेरे योग्य कोई कार्य हो तो आप शीघ्रही मुझे सूचना करना। यों प्रार्थना पुरस्सर पुनः नमस्कार कर चला गया ॥५५॥ उधर धन्यकुमार भी रवाना हुआ सो उसे रास्ते में जाते वक्त पूर्वोपार्जित शुभोदय से मनोहर तथा निर्जन्तु किसी शुद्ध स्थान में बैठे हुये अवधिज्ञान से युक्त, निरन्तर धर्मोपदेश देने वाले, तीन जगत के जीवों का हित करने वाले और गुणों के समुद्र मुनिराज दीख पड़े ॥५६॥५७॥ धन्यकुमार उनके दर्शन से हृदय में बहुत आनन्दित होकर उनके समीप गया । मुनिराज की तीन प्रदक्षिणा दी और हाथ जोड़कर देवतार्च्य उनके चरणों की अभिवन्दना की । तथा धर्म प्राप्ति के लिये उनके पास हर्ष पूर्वक बैठ गया ॥५९॥६०॥ मुनिराज भी उसे धर्म वृद्धि देकर उसकी शुभाशीर्वाद से प्रशंसा

की और इस प्रकार धर्मोपदेश देने लगे। कुमार! जिस धर्म के प्रभाव से पद पद में तुम्हें खजाना मिलता है, बड़ा भारी लाभ होता है, सर्व जगहँ मान्यता होती है, जो इस लोक तथा परलोक में हित करने वाला है, स्वर्ग सुख तथा शिव सुख का आधार है और जिनेश्वर, चक्रवर्ती तथा इन्द्र पद की सम्पत्ति का देने वाला है उसी धर्म का तुम्हें सेवन करना चाहिये ॥६३॥ क्योंकि धर्म के फल से धर्मात्माओं को तीन जगत की लक्ष्मी जन्य सुख, धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष ये चार पुरुषार्थ और उत्तम २ पद की प्राप्ति होती है ॥६४॥ उस धर्म को जिन भगवान ने मुनि–धर्म तथा गृहस्थ–धर्म इस प्रकार दो भेद रूप कहा है। उस में मुनिधर्म सम्पूर्णता से होता है और ग्रहस्थ धर्म एक देश रूप दयामय है। धीर मुनिराज मुनिधर्म के द्वारा उसी पर्याय से अनन्त सुख शाली मोक्ष को प्राप्त होते हैं ॥६६॥ अथवा सर्वार्थसिद्धि के सुख का उपभोग कर सर्वाज्ञावस्था को प्राप्त होते हैं। वा बड़ा भारी चक्रवर्त्ती पद पाते हैं अथवा चरम शरीरी होकर उत्तम २ तपश्चरण के द्वारा क्रम से मोक्ष चले जाते हैं ॥६७॥६८॥ और गृहस्थ धर्म के द्वारा बुद्धिमान पुरुष सर्व ऋद्धियों के समूह का आश्रय

भूत अच्युत स्वर्ग पर्यन्त स्वर्ग में वा सत्पुरुषों के द्वारा सेवनीय तथा सम्पत्ति के आकर अर्चनीय उत्तम कुल में अवतार लेते हैं और वहां सुख भोग कर अनुक्रम से तपश्चरण द्वारा कर्मों का नाश कर मोक्ष चले जाते हैं ॥६९॥७०॥ हे चतुर! इन दोनों धर्मों का मूल कारण, चन्द्रमां की तरह निर्मल, निःशंकादि आठ गुणों से युक्त, शङ्कादि पच्चीस मल रहित, जिन भगवान तथा इन्द्रादि की सम्पत्ति का कारण, उत्तम २ सुख का आकर, सम्यग्दृष्टि पुरुषों के साथ जाने वाले शुद्ध सम्यक्त्व को समझो। वीतराग भगवान को छोड़ कर सुखोपभोग तथा मोक्ष के कारण त्रिभुवन अर्चनीय और कोई देव नहीं हैं, न हुये तथा न होंगे ॥७३॥ जिन भगवान के कहे अहिंसा धर्म को छोड़कर दूसरे धर्म सब ऋद्धि तथा सुख के कारण और सत्य नहीं हैं ॥ ७४ ॥ समस्त परिग्रह रहित निर्ग्रन्थ गुरु से बड़े सत्पुरुषों के सत्कार करने योग्य तथा स्वर्ग मोक्ष के मार्ग का उपदेश करने वाले और गुरु नहीं हैं ॥७५॥ सर्वज्ञ भगवान के कहे हुये सात तत्त्वों से बढ़ कर सत्य तथा सम्यग्ज्ञान के कारण और तत्त्व इस संसार में नहीं हैं ॥७६॥ उत्तम पात्रदान छोड़ कर भोग तथा सुख के देने वाला और दान नहीं हैं तथा बारह प्रकार

तप छोड़कर कर्मों के नाश करने वाला और तप नहीं हैं ॥७७॥ इस प्रकार जिन भगवान के कथन में जो बुद्धिमान पुरुषों का निश्चय करना है तथा श्रद्धा और रुचि का रखना है, ये सब दर्शन रूप कल्पवृक्ष के बीज हैं। क्योंकि संसार में मनोभिलषित सुख का देनेवाला, तीन जगत के स्वामियों की तथा जिन भगवान की सम्पति का कारण यही सम्यक्त्व है। ऐसा समझ कर आठ गुण युक्त, चंद्र की कान्ति समान शुद्ध तथा पच्चीस दोष रहित सम्यग्दर्शन की शुद्धि तुम धारण करो ॥७९॥८०॥ तथा कहे हुये देव पूजनादि छह कर्म धर्म की सम्प्राप्ति के लिये सदैव आचरण करो ॥८१॥ जिन पूजन, गुरुओं की सेवा, स्वाध्याय, संयम, तप तथा दान ये गृहस्थों के नित्य करने योग्य छह कर्म पुण्य के कारण हैं ॥८२॥ भक्ति पूर्वक जिन मन्दिर तथा जिन प्रतिमा निर्माण कराकर अपनी शक्ति के अनुसार उत्तम २ तथा मनोहर आठ प्रकार पूजन द्रव्य से प्रति दिन जो जिन प्रतिमाओं की पूजा की जाती है उसे बुद्धिमान पुरुष सम्पूर्ण अभ्युदय की देने वाली कहते हैं ॥८४॥ यही कारण है कि जिन भगवान की पूजन से सम्पूर्ण सम्पत्तियें प्राप्त होती हैं विघ्न समूह तथा गृहारम्भ में होने वाले पाप का नाश होता है।

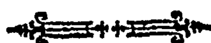
॥ ८५ ॥ जो गृहस्थ-उत्तम पात्र सद्गुरुओं की प्रतिदिन अज्ञान तथा मोह के नाश करने वाली और सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र की देने वाली सेवा भक्ति सुश्रूषा तथा सदा आज्ञा का पालन अपने धर्म लाभ के लिये किया करते हैं उसे गुरुपास्ति (गुरुसेवा) कहते हैं ॥ ८७॥ जो बुद्धिमान पुरुष मोक्ष की प्राप्ति के लिये सिद्धान्त का अभ्यास करते हैं वह तथा सामायिक नमस्कार और ज्ञानाभ्यास आदि जितने पावन कर्म हैं ये सब स्वाध्याय कहे जाते हैं। महर्षि लोग स्वाध्याय को त्रिभुवनवर्त्ति पदार्थों के देखने के लिये प्रदीप कहते हैं क्योंकि इस के द्वारा प्रचुर अज्ञानान्धकार का नाश होता है तथा यह पञ्चेन्द्रिय रूप शत्रुओं का घातक है ॥८८॥८९॥ यही हेतु है कि इसी ज्ञान से—सत्पुरुष हेयोपादेय का, भले बुरे का, देव शास्त्र और गुरुकी परीक्षा का, धर्म के स्वरूप का, मोक्ष मार्ग का, खोटे मार्ग का तथा झूठे सच्चे धर्म का स्वरूप जानने लगते हैं और जो अज्ञानी होते हैं वे जैसे जन्मान्ध पुरुष हाथी का ठीक २ स्वरूप नहीं जान सकता वैसे ही कभी कुछ भी नहीं जान ने पाते हैं ॥९०॥९१॥ इस प्रकार स्वाध्याय का फल समझकर बुद्धिमान पुरुषों को सिद्धान्तशास्त्र में प्रवेश

के प्रतिबन्धक अज्ञान का नाश करने के लिये और ज्ञान की सम्प्राप्ति के लिये शिवसुख साधन, स्वाध्याय करना चाहिये ॥ ९२ ॥ बारह प्रकार उत्तम व्रतों के पालन करने को, पञ्चेन्द्रिय रूप शत्रुओं के वश करने को, तथा हृदय में प्राणियों की दया करने को गणधर भगवान संयम कहते हैं। यह संयम निरन्तर पुण्य की सम्प्राप्ति करने वाला है और पापाश्रव का निरोधक है ॥९३॥९४॥ अष्टमी तथा चतुर्दशी के दिन अथवा और व्रतादि में नियम पूर्वक उपवास करने को दूसरा कायक्लेश तप कहते हैं ॥९५॥ बुद्धिमान पुरुष बारह प्रकार व्रतों के द्वारा जो तप आचरण करते हैं वह सम्पूर्ण तप, कर्म के भस्म करने के लिये अग्नि की समान है ॥९६॥ इसके द्वारा गृहस्थों के गृह सम्बन्धि आरम्भ से होने वाला पाप नाश होता है तथा गुणों के साथ ही साथ धर्म रूप कल्पवृक्ष वृद्धि गत होता है ॥९७॥ इस प्रकार समझ कर पर्वतिथी में बुद्धिमानों को उपवासादि पूर्वक निर्मल तप आचरण करना चाहिये और फिर उसे प्राणों के नाश होने पर भी नहीं छोड़ना चाहिये ॥ ९८ ॥ प्रतिदिन दान देने के लिये अपने गृह द्वार पर खड़े होकर निरीक्षण करना और उत्तम पात्र मिलने पर उन्हें दान देना चाहिये। क्योंकि दान

सुख का आकर है, अपना तथा दूसरे का हित करने वाला है, धर्म तथा सुख का देने वाला है, गृहारम्भ से होने वाले पाप का नाश करने वाला है और भोग भूमि की विभूति का प्राप्त कराने वाला है॥९९॥१००॥ इन छह कर्मों के द्वारा गृहस्थों को निरन्तर उत्तम धर्म की प्राप्ति होती रहती है तथा गृहारंभ से होने वाले पाप कर्म का नाश होता है ॥ १ ॥ हे कुमार ! इस प्रकार समझ कर तुम्हें—स्वर्ग सुख के देने वाले पावन गृहस्थों के छह कर्म नित्य करने चाहियें। क्योंकि इन्हीं के द्वारा परम्परा मोक्ष सुख भी मिल सकेगा। और देखो ! पांच अणुव्रत, तीन गुण व्रत और चार शिक्षाव्रत ये बारह व्रत भी गृहस्थ धर्म में पाले जाते हैं। गृहस्थ धर्म भी पाप का नाश करने वाला और स्वर्ग सुख का प्रधान कारण है। इस लिये कुमार ! धर्म की प्राप्ति के लिये तुम्हें श्रावकों के उत्तम व्रत धारण करने चाहियें। तुम इनके द्वारा उत्तम सुख तथा परम्परा मोक्ष भी प्राप्त कर सकोगे। सदैव सद्धर्म का सम्पादन करो, धर्मही का आश्रय लेओ क्योंकि धर्म गुणों का खजाना है। धर्म के अनुसार उत्तम मार्ग पर चलो, उसे प्रतिदिन अभिवन्दना करो, धर्म से तुम्हें सब वस्तुओं की अपापा

सिद्ध होगी, देखो धर्म का मूल दया है उसे कभी मत भूलो, धर्म में सदा निश्चल चित्त रहो यही उत्तम धर्म तुम्हारी सदा रक्षा करेगा। तुम जानते हो धर्म अनन्त सुख का समुद्र है और दुःख का नाश करने वाला है, बुद्धिमान लोग सदा धर्म का उपार्जन करते हैं, धर्म के द्वारा जल्दी ही सब गुण मिल जाते हैं, धर्म को मैं भी नमस्कार करता हूं। धर्म को छोड़ कर और कोई शिव सुख का देने वाला नहीं कहा जा सकता, धर्म का मूल क्षमा है, धर्म में अपने चित्त को एकाग्र करता हूँ, हे धर्म! तूं मेरी रक्षा कर।

इति श्रीसकलकीर्त्ति मुनि रचित धन्यकुमार चरित्र में धन्यकुमार के विघ्नों की शान्ति तथा धर्म श्रवण नाम दूसरा अधिकार पूर्ण हुआ॥



तृतीय अधिकार ।

विश्वविघ्नहरान्वन्दे पञ्च सत्परमेष्ठिनः ।
विश्वश्रीधर्मकर्तृंश्च विश्ववन्धून्गुणार्णवान् ॥

धन्यकुमार मुनिराज के द्वारा धर्मोपदेश सुनकर बहुत खुशी हुआ और अपने योग्य व्रत नियमादि श्रद्धा पूर्वक ग्रहण किये । बाद मुनिराज को सभक्ति अभि- वन्दना कर हाथ जोड़ कर पूछा—नाथ ! आप तीन जगत के जीवों का हित करने वाले हैं । आप से कुछ मुझे पूछना है । वह यह कि क्या कारण है जिससे मेरे भाई लोग तो मुझ से द्वेष करते हैं और किस पुण्य से माता प्रेम करती है ? तथा पद २ में मुझे बहुत सम्पत्ति मिलती है । क्या आप कृपा कर ये सब बातें मुझे कहेंगे ?

मुनिराज धन्यकुमार पर अनुग्रह कर उसके पूर्व जन्म की जीवनी सुनाने लगे—कुमार ! जरा अपने चित्त को कहीं जाने न देना, मैं तुम्हें पूर्व जन्म की कथा कहता हूँ । क्योंकि उससे तुम्हारे हृदय में संसार से भय उत्पन्न होगा, धर्म में अभि रुचि होगी, पाप से डरोगे और दान व्रत नियमादि में उत्तम विचार होंगे । तुम्हारी कथा से सर्व साधा- रण का भी उपकार हो सकेगा ।

भारतवर्ष—मगध देश, उसके अन्तर्गत भोगावती नाम नगरी थी। उसके स्वामी का नाम कामवृष्टि था। उसकी भार्या मृष्टदाना थी। उनके घर में सुकृतपुण्य नाम का नौकर था। जब मृष्टदाना गर्भवती हुई तब ही उसके पापोदय से कामवृष्टि मर गया। बाद-वह गर्भ जैसे २ बढ़ने लगा तैसे २ घर के सब लोग गर्भ के प्रचण्ड पाप से धराशायी हुये। पुत्र का जन्म होते ही मृष्टदाना की माता ने भी परलोक यात्रा की। धन धान्यादि सब वस्तुएं नष्ट हो गईं। साथ ही साथ पुण्य कर्म भी नष्ट हुआ। सच कहा है—जब अभागा कुपुत्र गर्भ में आता है तब कुटुम्ब, धन, सुख और पुण्य सभी नष्ट हो जाते हैं, और घर में दरिद्रता का वास हो जाता है। पापी पुत्र का पैदा होना सर्वथा बुरा है। समझो! पुत्र, कलत्र आदि जितनी वस्तुएं जो दुःख की कारण होती हैं वह सब पाप का फल है। इस लिये जो बुद्धिमान हैं उन्हें अनिष्ट संयोग का प्रधान कारण पाप प्राण जाने पर भी नहीं करना चाहिये। प्रत्युत सदा धर्म का उपार्जन करना उचित है। देखो! इस बालक ने पाप कर्म के सिवाय कभी पुण्य कर्म नहीं किया यही कारण है जो आज इसकी यह दारुण दशा हुई। यही समझ मृष्टदाना ने भी अपने

अभागे पुत्र का नाम अकृतपुण्य रक्खा। सब धन तो पहले ही नष्ट हो चुका था। जब विचारी मृष्टदाना को पेट भरना तक मुश्किल हो गया तब वह कुछ उपाय न देख लाचार होकर दूसरे के घर का पीसना पीस कर बहुत दुःख के साथ अभागे पुत्र का पालन पोषण करने लगी।

उधर कामवृष्टि के मरजाने बाद पुण्योदय से उसका नौकर वही सुकृतपुण्य भोगावती का मालिक हो गया था। उस अवसर में धन्यकुमार ने अवधिज्ञानी मुनिराज को नमस्कार कर पूछा-भगवन्! इस बालक ने पूर्व जन्म में ऐसा कौन पाप कर्म किया है और कैसे खोटे काम किये हैं जिससे आज इसे यह दशा देखनी पडी? मुनिराज उसकी कथा कहने लगे-जिसके सुनने मात्र से बुरे कामों के करने में भय होता है। इसी देश में भूतिलक नाम सुन्दर नगर था। उस में महाधनी धनपति वैश्य रहता था। धनपति बुद्धिमान, महादानी व्रती और सदा शुभ कर्म करने वाला था। एक दिन उसने अपने निर्मल चित्त में विचारा कि लक्ष्मी पुण्य के उदय से होती है। मेरी समझ में उसका फल केवल पात्रदान होना चाहिये। परन्तु जो उत्तम पात्र हैं ये तो केवल आहार

को छोड़ कर और कुछ भी कभी नहीं लेते हैं, और न निर्ग्रन्थ साधुओं को वस्त्र, धनादि दिये ही जा सकते हैं क्योंकि उनसे उनकी निर्ग्रन्थता में बाधा आती है। इस लिये यदि बड़े २ ऊंचे जिनालय बनवाये जावें, जिन भगवान की प्रतिमायें बनवाई जावें और उनकी प्रतिष्ठा करवाई जावे, तो अवश्य इन शुभ कर्मों के द्वारा लक्ष्मी सार्थक हो सकती है और कल्पलता की तरह इच्छित फल दे सकती है। क्योंकि देखो! जिन मन्दिरों में कितने जिन भगवान की पूजा से, कितने नमस्कार, स्तवन, दर्शन, गीत, नृत्य और वादित्रसे, कितने अभिषेक से, कितने धर्मोपकरणादि के दान से, कितने उद्यापनादि से और कितने यात्रा करने से बड़े भारी पुण्य कर्म का उपार्जन करते हैं। उनमें योगिराज भी रहते हैं उनके द्वारा धर्मकी प्रवृति होती है और धर्मके द्वारा भव्य पुरुष स्वर्गादि सुख के अनुभोक्ता होते हैं इत्यादि नाना तरह के अच्छे २ कर्मों से गृहस्थ लोग जिन मंदिरों में पुण्य सम्पादन किया करते हैं। इसलिये यदि यह कहा जाय कि धनी लोगों को लक्ष्मी का वास्तविक फल जिनमंदिर का निर्माण तथा उद्धार कराना छोड़कर और कुछ नहीं है तो कुछ बुरा नहीं कहा जा सकता। क्योंकि सहस्रों वर्ष पर्यन्त उन में

जिन प्रतिमायें पूजी जाया करेंगी। जो लोग प्रतिमायें बनवाते हैं उन्हें कितना पुण्य बन्ध होता होगा उसे कौन कह सकता है ? इसलिये धनी लोगों को जिन प्रतिमायें बनवानी चाहिये। उनके द्वारा वे स्वर्ग तथा शिव सुखके भोगने वाले हो सकेंगे। ग्रन्थकार कहते हैं कि जो लोग जिन प्रतिष्ठा करवाते हैं उनके कितना पुण्य कर्म बन्ध होता है उसकी संख्या मैं नहीं जानता क्योंकि प्रतिष्ठा के द्वारा धर्मकी वृद्धि होती है। यही हेतु है कि प्रतिमा बनवाने वाले बहुत पुण्य कमाते हैं। कितने मिथ्यादृष्टि तो जिन प्रतिमा तथा प्रतिष्ठा करवा कर ही जैनी होते हैं और तरह नहीं। तात्पर्य यह कि जिनप्रतिमा और जिनप्रतिष्ठा पुण्यकी कारण हैं इसलिये धनिक लोग जिनालय क्यों न बनवावें ? इसी विचार से धनपति शेठ ने बड़ा विशाल सुन्दर जिनालय निर्माण करवाया और सुवर्ण रत्नमयी जिन प्रतिमायें बनवाईं। चारों संघ को बुलवा कर उन प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा विधि के अनुसार बहुत धन लगाकर प्रतिष्ठा करवाई और जिनालय में देनेके लिये सुवर्ण और रत्नमयी भृंगार, कलश प्रभृति धर्मोपकरण बनवाये। उन रत्नमयी प्रतिमाओं की प्रसिद्धि सब जगहँ फैल गई। उसे सुनकर किसी दुर्व्यसनी चोर ने

लोभमें आकर विचारा कि उस जिनालय की रक्षा के लिये बहुत रक्षक नियत हैं सो विना साधु वेष धारण किये किसी तरह उसके भीतर नहीं जा सकूंगा। इस प्रकार विचार कर वह मायावी लोभके वश हो ब्रह्मचारी बन गया। कपटभाव से कायक्लेशादि तपश्चरण करने लगा और भोले लोगों में अपने गुणोंकी प्रशंसा करने लगा। ऐसे ही देश देशों में घूमता हुआ भूतिलक पुर में आ पहुंचा। जब लोगों के मुख से ब्रह्मचारीकी धनपति ने प्रशंसा सुनी तो उसीवक्त उसके पास गया और नमस्कार कर उसे अपने मन्दिर में लिवा लाया। कुटिलात्मा ब्रह्मचारी भी झूंठे तपश्चरण से लोगों को अनुरक्त करके बुगले की तरह जिनालय में रहने लगा।

किसी दिन धनपति ने पापी ब्रह्मचारी से कहा महाराज! मुझे व्यापारार्थ दूसरे देश जाना है इसलिये आपसे प्रार्थना है कि जबतक मैं पीछा न लौटूं आप जिनालय की रक्षा करना। ब्रह्मचारी ने यह कहकर टाल दिया कि हम यहां नहीं रहेंगे (सच है कि जो लोग अन्तरङ्ग के काले होते हैं उनकी भीतरी बातें कौन जान सकता है) ठीक यही हालत सरल स्वभावी धनपति की हुई वह ब्रह्मचारी के भीतरी दिलकी बात न जानकर

उसके इन्कार करने पर और भी आग्रह करने लगा और किसी तरह उन्हें रक्षा का भार सौंपकर आप चला गया । इधर मायावी ब्रह्मचारी का दाव लग गया सो व्यसनों के द्वारा जिनालय के सब उपकरणों को तीन तेरह कर दिये। परन्तु यह पाप कबतक छिप सकता था सो ब्रह्मचारी के शरीर में कोढ़ फूट निकली, सारा शरीर दुर्गन्धमय हो गया, उसके द्वारा बड़ा ही दुःख होने लगा । सच कहा है अधिक पाप का अथवा अधिक पुण्य का फल प्रायः उसी वक्त उदय हो आता है। पाप का फल बहुत बुरा होता है और पुण्यका अच्छा होता है । पापियों को इसी भव में नाना तरह के रोगादि तथा परलोक में नरक दुःख भोगने पड़ते हैं और पुण्यात्माओं की सब प्रशंसा करते हैं, बड़ी ही प्रतिष्ठा होती है, जगत में यश फैलता है और परभव में भी उत्तम गति मिलती है । जो लोग देव गुरु और शास्त्र की पूजन करते हैं वे स्वर्गमें जाते हैं और जो पापी लोग निर्माल्य के खाने वाले हैं वे नरक में जाते हैं । उनके वंशका सर्वनाश हो जाता है, धन चला जाता है, नाना तरह के दारुण रोग भोगने पड़ते हैं। इतने पर भी छुटकारा न होकर अन्तमें उनके लिये नरक द्वार तयार रहता है । ग्रन्थकार कहते हैं कि

हलाहल विष खालेना बहुत ही अच्छा है फिर उससे उसी वक्त भले ही प्राण चले जायं परन्तु निर्माल्य खाना अच्छा नहीं। कारण इसके द्वारा अनन्त भव बिगड़ जाते हैं। इस बात को ध्यान में रखकर बुद्धिमानों को कभी देव गुरु शास्त्र का निर्माल्य नहीं लेना चाहिये। किन्तु जैसे विषका उपयोग बुरा है उसी तरह निर्माल्य भी बुरा समझ कर छोड़ देना चाहिये।

ब्रह्मचारी उसी भीषण अवस्था में वहीं रहा करता था। इसवक्त उसकी और भी दशा बिगड़ गई थी। सब अङ्ग प्रत्यङ्ग कोढ़के मारे गले जा रहे थे। देखने में बड़ी घृणा पैदा होती थी, आकृति भयानक होगई थी, हरवक्त रौद्र भाव बने रहते थे। थोड़े में यों कहो कि वह खासे दुःख समुद्र से डूबा हुआ था। इतने में धनपति भी निर्विघ्न विदेश यात्रा से लौट आया। उस के देखतेही ब्रह्मचारी को बड़ा क्रोध आया। उसके मुहँ से यही आह निकली कि मरा भी नहीं जो पीछा चला आया? इतना कहकर शेठ के ऊपर दारुण रौद्र ध्यान करने से उसकी वेदना और भी बढ़ गई और इसी दशा में बड़े ही कष्ट से मर गया। मरकर निर्माल्य भक्षण के पापसे सातवें नरक में गया। वहां अत्यन्त दुर्ग-न्धित उपपाद प्रदेश में ऊपर पांव तथा नीचे मुख

होकर उत्पन्न हुआ और मुहूर्त मात्र में हुंडक संस्थान तथा कुत्सित शरीर धारण कर पृथ्वी पर गिरा गिरते ही पृथ्वी के आघात से पांचसौ योजन उछला और पीछा गिरा। शरीर के खण्ड २ होगये *। जैसे वृक्ष से गिरकर पत्ता वायु वेग से पृथ्वीपर लोटा करता है ठीक वही हालत इसकी नरक में थी। नरक बड़ा ही भयानक होता है, उस में दुर्गन्ध का अन्त नहीं, एक साथ हजार बीछूओं के काटे की तरह दुःख होता है, चारो ओर वन की तरह काँटों से संकीर्ण होता है। जब यह वहां देखता है तो इसे भयानक लाल २ नेत्र किये हुये और दारुण कर्म करने वाले नारकी लोग दीख पड़े और ठीक ऐसी ही सर्व दुखों की स्थान, अस्पर्शनीय, अति भयानक, नरकों की भूमि दीख पड़ी। तब यह विचारने लगा। मैं कौन हूं? यहां क्योंकर कहां से आया? यह स्थान इतना भीषण क्यों है? और ये भयंकर लोग कौन हैं? विचारते ही इसे विभंगा अवधि उत्पन्न होगई। उसके द्वारा अपने को भयंकर नरक में गिरा हुआ समझकर पूर्व जन्म के बुरे कर्मों को विचारने लगा। हा? पांच इन्द्रियों के विषय में

---

* नारकियों का शरीर पारे की तरह होता है वह खण्ड २ होकर भी पीछा मिल जाता है।

आसक्त होकर मुझ पापी ने सात व्यसन सेवन किये थे, अभक्ष्य मधु मासादि खाये थे, स्वच्छन्द होकर मदिरा पान किया था, चोरी और माया चारादि के द्वारा दूसरों का धन लूटा था, दूसरों की स्त्रियों से बलात्कार किया था, जीवों की हिंसा की थी, झूठे और कडुवे बचन बोले थे, जिनालय के उपकारणादि का हरण किया था, आर्त, रौद्र, दुर्लेश्या, बुरी चेष्टा और दूसरों को दुःख देना आदि दुराचारों से निरन्तर पाप ही पाप उपार्जन किया था उसी महापाप से यहां यह दारुण दुःख भोगना पड़ा है। यह दुःख कितना दुरन्त और दुःसह है जिसका संसार में कोई उपमान नहीं दीखता। पाप तो मैंने बहुत ही कमाया और पुन्य के कारण-न तो कुछ व्रत नियमादि ही पालन किये, न नमस्कार मंत्र का ध्यान किया, न जिन पूजन की, न गुरुओं के चरणों की सेवा की, न इन्द्रियें वश में की; न उत्तम २ पात्रों को दान दिया और न ध्यान ही किया अथवा थोड़े में यों कहो कि शुभ कर्मों के द्वारा धर्म का लेश भी सम्पादन नहीं किया जो उत्तम गति के सुख का कारण और दुर्गति से रक्षा करने वाला है। यही कारण है कि--मुझे दुःख प्रचुर और महा निंद्य दुःख रूपी समुद्र के बीच में जन्म लेना पड़ा। हा! मैं

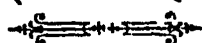
पाप शत्रु के द्वारा पूर्ण रूप से जकड़ा हुआ हूं। मैं कहां जाऊं? और किस से जाकर अपनी दुःख कहानी सुनाऊं? इस समय पाप का बड़ा ही दारुण उदय होने से मुझे तो यहां कोई रक्षक भी नहीं दीख पड़ता। हा! इस घोर दुःख समुद्र से क्योंकर मैं पार हो सकूंगा? हा! दैव (कर्म) ने मेरे शिर पर बड़ी भारी यातना का पहाड़ गिरा दिया। यह तो इधर अपने प्राकृत कर्मों की प्रायश्चित वह्नि से भीतर बाहर जल ही रहा था कि इतने में कितने नारकियों ने क्रोधित होकर इस के शरीर के मुद्गरादि शस्त्रों से खण्ड २ कर दिये, कितने निर्दयी पापियों ने यह कह कर कि देख ये वेही नेत्र हैं न? जिस से बुरी तरह दूसरे की ओर देखा था झट से नेत्र उखाड़ लिये, कितने दुर्बुद्धियों ने हृदय में उत्पन्न हुये पाप विकार से उसके उदर को फाड़ कर सब आतें तोड़ डाली, कितनों ने क्रकच (करोत) के द्वारा उसके शरीर को चीर डाला, कितने अधम शरीर के तिल बराबर खण्ड २ करके और अधिक दुःख देने लगे। नारकियों के शरीर के टुकड़े पारे की तरह मिल जाते हैं क्योंकि जबतक आयु की स्थिती का नाश न होगा तब तक उनकी मृत्यु न होकर ऐसी ही अवस्था होती रहैगी। विचारे

ब्रह्मचारी के जीव का एक ओर तो वेदना से छुटकारा हुआ ही नहीं था कि इतने में कितने नारकियों ने आकर और प्रचुर दुःख देने की इच्छा से वहां से उठा लाकर उसे गरम तैल की कढ़ाई में डाल दिया। सारा शरीर देखते २ जल गया। उसकी शान्ति के लिये वहां से निकल कर वैतरनी नदी के दुर्गन्धित जल में डुबकी लगाई परन्तु वहां भी उसे शान्ति न मिली। क्योंकि वह जल मांस तथा खून की तरह अत्यन्त ही ग्लानिकारक होता है सो उससे संताप और भी अधिक बढ़ गया। वहां भी जब देखा कि शान्ति नहीं है तब इस इच्छा से कि वन में जरूर ही कुछ न कुछ आराम मिलेगा वहां से चलकर वन में पहुंचा। और किसी वृक्ष के नीचे बैठना ही चाहता था कि इतने में प्रचण्ड वायु चलने से खड्ग की तरह तीक्ष्ण पत्र ऊपर से गिरे। गिरते ही शरीर खण्ड २ होगया। वहां से भी उसी दशा में दूसरे वन में गया सो वहां वैक्रियक सिंह व्याघ्रादि हिंस्र जीव खाने लगे। उसी वक्त कितने नारकी लोग और भी आकर उसे यह इशारा करके कि देख! पहले तो बहुतसी परस्त्री की जीवनी खराब की थी आ और अब भी उस सुखका अनुभव कर, ऐसा कह कर बलात् जलती हुई लोह की पुतली से आलिङ्गन करा देते थे।

कितने संडासी के द्वारा उस के मुख को जबरदस्ती से चीर कर मद्य की तरह गरम तांबा पिलाते थे। जितने दुःसह तथा सब दुःखके कारण रोग हैं वे सब नारकियों के शरीर में स्वभावही से होजाते हैं। उन्हें पियास इतनी अधिक सताती है कि यदि सारा समुद्र पी जांय तब भी वह न मिटै इतने पर भी जल की एक बूंद तक नहीं मिलती। संसार मात्र के अन्न से भी न मिटने वाली भूख हृदय जला देती है परन्तु तिल मात्र तक अन्न खाने को नहीं मिलता। वहां शीत इतनी है कि एक लाख योजन मन का लोह पिंड डालते ही पानी होजाता है, और इतनी ही अधिक गरमी रहती है। इस प्रकार नरक में परस्पर में दिये हुये और मन बचन काय की बुरी वृत्ति से उपार्जन किये हुये महा पाप के उदय से शीत उष्ण क्षुधा तृषादि की भीषण यातनाओं का उस ब्रह्मचारी के जीव ने निरन्तर अनुभव किया। बाणी में भी उतनी शक्ति नहीं है जो नारकीय पीड़ा का वर्णन कर सके। उस पापी ने तेतीस सागर पर्यन्त वहीं अनेक तरह के दुःख भोगे जहां दुःख समुद्र में डूबे हुये नारकियों को निमिष मात्र भी सुख नहीं होता है। जब उसकी नरकस्थिति पूर्ण हुई तब वहां से निकल कर पापोदय से स्वयंभूरमण समुद्र

में महामत्स्य हुआ। वहां भी उसने बहुत दिनों तक जीवों के भक्षण से फिर भी सप्तम नरक का पाप उत्पन्न किया। सो आयु पूर्ण होते ही पीछा उसी नरक में गया जिसके दुःखों का वर्णन ऊपर किया जा चुका है। वहां पहले की तरह दुःखानुभव कर निकला और भव समुद्र में—सब दुःखों की कारण त्रस तथा स्थावर योनियों में चिरकाल भ्रमण कर यही अकृतपुण्य हुआ है। देखो! इस अकृतपुण्य ने पूर्व जन्म में मायाचार के द्वारा जो पाप उपार्जन किया था उसी के भीषण फल से इसे दारुण नरक यातना भोगनी पड़ी है। यही विचार कर बुद्धिमानों को पाप कर्म से आत्मा की रक्षा करनी चाहिये—और व्रत संयमादि ग्रहण करने चाहिये जिससे सुख मिल सके यही कहने का सार है।

धर्म और अधर्म के निरूपण करने वाले जिनेन्द्र, और उसके फल को प्राप्त हुये निरूपम सिद्ध भगवान, पावन धर्म का उपदेश देने वाले आचार्य और उपाध्याय तथा साधु ये सब मिलकर मुझे अपने २ गुणों का लाभ करावैं। क्योंकि त्रिभुवन के राजा और महाराजा इन्हीं की स्तुति करते हैं इसलिये ये ही स्तवन के पात्र हैं।



इति श्रीसकलकीर्त्ति मुनि रचित धन्यकुमार चरित्र में अकृतपुंण्य के भवान्तर का वर्णन नाम तृतीय अधिकार पूर्ण हुआ ॥ ३ ॥

चतुर्थ अधिकार ।

जिनान्धर्माधिपान्वन्दे सिद्धान्धर्मफलाङ्कितान् ।
सूरींश्च पाठकान्साधून्धर्मान्धर्मप्रवर्त्तकान् ॥

एक दिन दरिद्री और दीन अकृतपुण्य सुकृतपुण्य के चने के खेत पर चला गया और नौकर की तरह सुकृतपुण्य से बोला । सुकृतपुण्य ! देखो ये और लोग जो चने उखाड़ रहे हैं मैं भी इनकी तरह यदि चने उखाडूं तो क्या मुझे कुछ देओगे ? उसके कातर बचन सुनकर सुकृतपुण्य विचारने लगा—हा ! इस संसार में मनुष्यों के कर्म की विचित्रता जो कभी स्वामी होते हैं वे तो नौकर हो जाते हैं और जो नौकर होते हैं वे स्वामी हो जाते हैं। हाय ! इस के पिता के प्रसाद से मेरी यह दशा हुई जो मैं धनिक और गांव का स्वामी हो गया और यह भी उसी का पुत्र है जिस की आज यह दशा ! जो कर्मों का मारा हुआ मुझ से भी याचना कर रहा है । इस दुष्ट दैव को धिक्कार है जो समय मात्र में उलटे का सीधा और सीधे का उलटा कर देता है । अथवा यों कह दो कि पाप के उदय से धनी दरिद्री हो जाते हैं और पुण्य के उदय से निर्धन धनी हो जाते हैं । यही विचार कर जो

निर्धन हैं उन्हें तो धन लाभ के लिये पुण्य उपार्जन करना चाहिये और जो धनिक हैं उन्हें विभव वृद्धि के लिये सब पाप कर्म छोड़ने चाहिये ।

सुकृतपुण्य ने उसकी दीन दशा देख कर उसी वक्त कितने धन के भरे हुये सुवर्ण के कलश उसे दिये। परन्तु अकृतपुण्य का पाप कर्म इतना प्रचण्ड था जो हाथ में धरते ही वे अंगार की तरह जलाने लगे। उन्हें देख कर अकृतपुण्य बोला-क्यों भाई ! सब के लिये तो तूं चने दे रहा है और मेरे लिये ये अङ्गार ! ऐसा क्यों ? तब सुकृतपुण्य ने समझ लिया कि अभी इसके दारुण पाप का उदय है। क्या किया जाय ? भाई ! मेरे अङ्गार तूं मुझे ही देदे और जितने चने तूं ले जा सकता है उतने गठरी बांधकर खेत से ले जा। उसके कहने के अनुसार अकृतपुण्य जितने चने अपने से उठ सके उतने सिर पर धर कर घर चला गया। चने देख कर उसकी माता ने कहा कि ये चने तू कहां से लाया है ? उत्तर में अकृतपुण्य ने कहा माता ! मैं सुकृतपुण्य के खेत पर गया था वहीं से चने लाया हूं। सुन कर माता बहुत ही दुःखिनी हुई और कहने लगी। हाय ! जो पहले मेरा नौकर था आज पाप के उदय से मेरा पुत्र उसी का नौकर हुआ।

जो बुद्धिमान हैं उन्हें जहां पूर्व अवस्था में नाना तरह के ऐश आराम किये गये हैं वहीं फिर नौकर की तरह रहना उचित नहीं है । ठीक वही हालत अभी मेरी है। धन असुख सब तो नष्ट हो चुका और दरिद्रता सामने खड़ी है । इसलिये कहीं अन्यत्र ही जाना चाहिये । फिर वहां दुःख हो अथवा सुख ! क्योंकि पाप और पुण्य का फल बिना भोगे नहीं छूटता है। यही विचार कर अकृत्यपुण्य की माता ने चने का पाथेय बनाया और पुत्र को साथ लेकर कहीं अन्यत्र जाने के विचार से प्रयाण यात्रा कर दी । सो चलती २ अवन्ती देश के अन्तर्गत सीसवाक गाम में पहुंची और पुत्र का मार्ग-श्रम दूर करने लिये ग्राम के स्वामी के गृहाङ्गण में बैठ गई। स्वामी का नाम था बलभद्र। उसे देख कर बलभद्र ने पूछा—माता ! तुम कहां से आई हो ? और यहां से किस लिये कहां जाओगी ? इतना पूछने पर भी विचारी लज्जा के मारे कुछ उत्तर न दे सकी तब बलभद्र ने फिर आग्रह के साथ पूछा—तब बोली ' भाई ! पाप के उदय से जीवों को बहुधा दुःख ही उठाने पड़ते हैं। मैं दैव की मारी मगधदेश से यहां आ निकली हूं और वहीं जाऊंगी जहां मेरी जीविका हो सकेगी। सुनकर बलभद्र बोला यदि तेरी यह इच्छा है तो यहीं रह

और मेरे घर में भोजन बनाया कर। और तेरा पुत्र मेरे गाय के बच्चों को वन में चरा लाया करैगा। मैं तुम्हारे लिये उचित वस्त्र भोजन का प्रबन्ध कर दूंगा। उसनें बलभद्र के कहने को स्वीकार किया । बलभद्र ने उसके रहने के लिये अपने घर ही के पास एक छोटी सी झोंपड़ी बनवादी। माता पुत्र वहीं पर रह कर उसकी नौकरी करने लगे और बलभद्र के द्वारा दिये हुये वस्त्र भोजनादि से अपना निर्वाह करने लगे। बलभद्र के सात पुत्र थे। उन के प्रातःकाल खाने के लिये सदा खीर का भोजन बना करता था। सो उन्हें खीर खाते हुये देख कर अकृत्यपुण्य भी अपनी माता से रोज २ खीर मांगने लगा। माता ने उत्तर दिया–पुत्र ! तूं नहीं जानता कि–बिना पुण्य के ऐसा उत्तम खाना नहीं मिल सकता। तूने न तो पर भव में और न यहीं कुछ पुण्य कमाया है अब तूं हीं कह मैं तुझे कहां से खीर का भोजन दे सकती हूं ? देख ! उत्तम भोजन उत्तम वस्त्र, धन, धान्य और सुख ये सब धर्म के बिना कभी नहीं मिलते हैं। इसी तरह उसे उसकी माता ने बहुत समझाया तौभी वह कर्त्तव्याकर्त्तव्य को न जान सका । इसीलिये प्रति दिन वह खीर मांगा करता था और न मिलने पर रोने लगता था । उसे

रोता हुआ देखकर बलभद्र के पापी पुत्र विचारे को थप्पड़ों से मारा करते थे। इसी तरह मारते २ एक दिन उसे कहीं अधिक चोट लग गई सो उसका मुंह सूझ कर विकृत होगया। अकृतपुण्य की ऐसी दशा देखकर बलभद्र ने उससे पूछा—क्यों यह मुख कैसे सूझ गया है? उसने कहा प्रभो! खाने को खीर मांगा करता था परन्तु था तो पाप का उदय, सो वह कैसे मिल सकती थी? उसके बदले में आपके पुत्रों ने मेरी यह दशा की है। सुनकर बलभद्र को बड़ी ही दया आई सो उसने अकृतपुण्य की माता से कह दिया कि तू मेरे घर से दूध, घी, चांवल शक्कर अपने घर लेजाकर खीर बनाना और उसे पुत्र को खिलाकर उसकी अभिलाषा पूरी करना। बलभद्र के कहे अनुसार वह चांवल वगैरह अपने घर लाई और पुत्र से बोली—पुत्र! आज मैं तुझे खीर खाने को दूंगी सो तू घर पर जल्दी ही आ जाना। अकृत्यपुण्य माता से यह कह कर कि—जैसा तुम कहती हो वही करूंगा गाये के बच्चों को लेकर खुशी के साथ वन में चला गया। उधर उस की माता ने खीर बनाई। इतने में मध्याह्न होते २ अकृत्यपुण्य भी घर पर आ गया। उसे वहीं बैठाकर और यह कह कर "पुत्र यदि कोई

साधु हमारे घर पर आजावें तो यहां से जाने मत देना। उन्हें दान दे कर बाद अपन खावेंगे। दान, पुण्य-प्राप्ति का कारण है। देख! उत्तम पात्र को दान देने से हम लोगों को जनमं २ में ऐसा ही उत्तम आहार मिला करेगा और सब तरह का सुख भी मिलेगा। उत्तम दान देने से ही गृहस्थाश्रम सार्थक होता है, दोनों लोक में सुयश फैलता है, पुण्य कर्म का बन्ध होता है। दानी लोगों को उत्तम सुख सम्पत्ति मिलती हैं। जिन लोगों के यहां उत्तम पात्रों को दान नहीं दिया जाता है उनका गृहस्थाश्रम पत्थर की नाव की तरह है, निन्दित है, पाप का कारण है, अशुभ है और दुर्गति को देने वाला है। देख! हमने पहले दान नहीं दिया इसीसे तो आज दरिद्रता का दुःख सहना पड़ा है और यही कारण है कि हमको उत्तम २ भोजन नहीं मिलता। इस लिये दान जरूर देना चाहिये। जिससे हमारा गृहस्थाश्रम और जीवन सफल होगा साथ ही उत्तम पुण्य तथा लक्ष्मी की सम्प्राप्ति हो सकेगी।" जल भरने के लिये चली गई। इतने ही में पुण्योदय से—बाह्याभ्यन्तर परिग्रह रहित, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र रूप अमोल्य रत्नत्रय के आधार, दाता को

सुख देने के लिये दूसरे कल्पवृक्ष, तपश्चरण के द्वारा क्षीण शरीरी, गुणराशि विराजमान, संसार के जीवों का हित करने में सदा उत्सुक, अङ्ग पूर्व रूप समुद्र के पारगामी, ईर्यापथ रूप उत्तम नेत्र के धारक, सब वस्तुओं में उदासीन, ऊंच नीचका विचार न करने वाले, धर्मके उपदेशक, इन्द्र, धरणेन्द्र, राजा, महाराजा और भव्य पुरुषों के द्वारा वन्दनीय, महनीय और स्तवनीय, लाभ अलाभ सुख दुःखादि में समदर्शी, जितेन्द्रिय, शान्तमूर्ति, परम कारुणिक, दिशारूप, वस्त्र के धारक, धीर, अनेक ऋद्धियों से विभूषित और सर्वोत्कृष्ट महापात्र सुव्रत मुनिराज को एक महीने के उपवास के पारणा के दिन शरीर स्थिति के लिये बलभद्र के घर की ओर आते हुये पास ही में देख कर अकृत्यपुण्य शुद्ध मन से विचारने लगा। अहा ? ये बड़े भारी साधु हैं। देखो! इनके पास वस्त्रादि कुछ भी नहीं है। ये मेरे बड़े भारी पुण्य से आये हैं। इन्हें मैं न जाने दूं। यों विचार कर सरल अकृतपुण्य पुण्य से प्रेरणा किया हुआ झट से उनके सामने जा खड़ा हुआ और अभि वन्दना कर बोला। पूज्य ! माता ने बहुत अच्छी खीर बनाई है वह आपके भोजन के लिये दी जावेगी। मेरी प्रार्थना है कि आप यहीं ठहरें तब

तक जल लेकर मेरी माता भी आई जाती है। मुनिराज उसे यह समझाकर कि हमारा यह मार्ग नहीं है रास्ते में धीरे २ चलने लगे इतने में वह भी उनके आगे होकर जोर से बोलने लगा। तात! मेरे ऊपर दया कर थोड़ी देर ठहरो और यहां से न जाओ बड़ी ही अच्छी खीर बनी है। कहो तो तुम्हारा इसमें बिगड़ा क्या जाता है? इतनी प्रार्थना करने पर भी जब मुनिराज न ठहरे तो अकृतपुण्य उनके पांव पकड़ कर बोला—देखो! अब तो मैंने अपने हाथों से आप को खूबही जोर से पकड़ रखे हैं देखूं कैसे जा सकोगे? महाराज! आप बड़े ही दुर्लभ हैं! अखीर में मुनीन्द्र का भी दिल कुछ करुणार्द्र हो आया सो उसे खेदित न कर थोड़ी देर तक समौन वहीं खड़े रहे। सच तो है साधु लोग सब पर दयालु होते हैं न? इतने ही में शुभोदय से उसकी माता भी जल लेकर आगई। मुनिराज को देखकर उसे बहुत खुशी हुई जैसे दुर्लभ धन के अनायास मिल जाने से खुशी होती है। शिर पर से घड़ा जमीन पर उतार कर मुनिराज के चरणों को नमस्कार किया और विभो! तिष्ठ! तिष्ठ!! तिष्ठ!!! कहकर स्वामी का पड़गाहन किया बाद—घर में लिवा ले जाकर उनके विराजने को ऊंचा आसन

दिया, जगद्गुरु को उस पर बैठा कर गरम जल से उनके चरण कमल धोये और उस पाद-पवित्र जल को ललाट में लगाकर उनकी पूजा की। पश्चात प्रणाम कर मन वचन काय की शुद्धि से अकृत्यपुण्य की माता ने पुत्र के साथ२ बड़ा भारी शुभ उपार्जन किया। कारण ये नवधा भक्ति पुण्य सम्पादन की हेतु हैं। बाद-श्रद्धा, शक्ति, निर्लोभता, भक्ति, ज्ञान, दया और क्षमा इन सत गुणों से युक्त हो उन उतम पात्र मुनिराज को मधुर, प्राशुक, निर्दोष, तृप्ति कारक और तपवर्द्धक खीर का आहार देने लगी। मुनिराज को आहार करते हुये देखकर अकृत्यपुण्य बहुत आनन्दित हुआ। उससे उसे बहुत पुण्य का बन्ध हुआ। वह विचारने लगा—अहा! आज मैं कृतार्थ हुआ, मैं धन्य हूं, पुण्यवान हूं, मैं बहुत ही सुखी हुआ, आज मैं महादाता कहलाया, जन्म सफल हुआ, गृहस्थाश्रम भी आज ही कृतार्थ हुआ, आज मुझे बहुत ही पुण्य होगा और इसी से स्वर्गादि सुख भी मिलेगा। देखो! न? आज मैं कितना भाग्यशाली हूं जो देव, राजा, महाराजा, मनुष्य, विद्याधर महनीय और वन्दनीय महापात्र मेरे घर में भोजन कर रहे हैं। इन्हीं पवित्र भावनाओं से शुद्ध हृदय अकृत्यपुण्य ने अपने सरल भावों के द्वारा

बहुत कुछ पुण्य सम्पादन कर लिया। जो स्वर्गादि सुख का कारण है। उधर जितेन्द्रिय योगीराज ने भी खड़े २ शान्त भावों से स्वाद वगैरह का विचार न कर पाणिपात्र में आहार कर दाता को पावन किया और बाद उन्हें शुभाशीर्वाद देकर आप ध्याना-ध्यन के लिये वन विहार करो गये।

मुनिराज अक्षीणमहानस ऋद्धि से विभूषित थे। शास्त्रों का यह लेख है कि—जिस दाता के यहां उक्त ऋद्धिधारक साधुओं का आहार हो जाता है फिर उस दिन उस के यहां भोजन सामग्री कम नहीं होती उस से चक्रवर्ति के सैन्य तक का भोजन हो सकता है। ठीक ऐसा ही अकृतपुण्य के यहां ऋद्धिधारी मुनिराज का आहार होने से हुआ। भोजन सामग्री अक्षय होगई। जब मुनिराज आहार करके चले गये तब अकृतपुण्य की माता ने अपने पुत्र को यथेष्ट जिमाया और अपने भी जीमा। परन्तु देखती है तो भोजन सामग्री उतनी की उतनी है। तब उसने अपने स्वामी बलभद्र को सकुटुम्ब भोजन के लिये बुलाया और उन्हें खूब जिमाया तब भी जब वह कम नहीं हुई तो सारे शहर के लोगों को जिमा दिया। उस महा दान से माता पुत्र की बहुत ही प्रसिद्धि हुई। उन्हें सब

लोग मानने लगे, चन्द्र की तरह निर्मल सुयश चारों ओर फैल गया। और पुण्य उपार्जन के करने वाले कह लाये।

कुमार! सुनो—यही दान दुर्गति का नाशक है, हित का करने वाला है। इसलिये बुद्धिमानों को दान देने में कभी आगा पीछा नहीं करना चाहिये। दान के द्वारा ही गृहस्थता गुणवती कही जाती है, बुद्धिमानों का प्रयत्न दान के लिये हुआ करता है, दान को छोड़ कर कोई उत्तम सुख का देने वाला भी नहीं है, समझ दार ही दान देने के योग्य होते हैं, दान ही दाता के मन को अपनी ओर खींचता है इसलिये कहना यही है कि सब लोग दान जरूर ही दिया करें।

त्रिकाल सम्बन्धी तत्व के विवेचन करने वाले धर्म के अधिष्ठाता जिनेन्द्र, अन्तरहित निरूपम और लोकाग्र वासी सिद्ध, तथा महातपस्वी पञ्चाचार के पालने वाले आचार्य उपाध्याय और साधु इन सब को मैं नमस्कार करता हूं वह इसीलिये कि ये महात्मा लोग अपने २ गुण मुझे वितीर्ण करैं।

इति श्रीसकलकीर्त्ति मुनिराज रचित धन्यकुमार चरित्र में अकृतपुण्य के दान का वर्णन नाम चतुर्थ अधिकार पूर्ण हुआ ॥ ४ ॥

पञ्चम अध्याय

दृक्चिद्वृत्तपोधर्मानर्घ्यरत्नप्रदान्सताम् ।
त्रिजगत्स्वामिवन्द्याङ्घ्रीन्वन्देऽहं परमेष्ठिनः ॥

दूसरे दिन अकृतपुण्य बची हुई खीर खाकर गाय के बच्चों को चराने के लिये वन में चला गया। गरिष्ट आहार के करने से उसे निद्रा आने लगी सो एक वृक्ष के नीचे गाढ़ निद्रा-राक्षसी के बस होगया। उधर बच्चे उसे न देखकर स्वयं घर पर आगये। अकृतपुण्य की माता बच्चों को देख कर विचार ने लगी कि—क्या कारण है जो बच्चे तो आगये और पुत्र नहीं आया? पुत्र की चिन्ता से दुःखी होकर रोने लगी। (बलभद्र से उसके ढूंढ़ने को कहा) मृष्टदाना के आग्रह से बलभद्र अपने नौकरों को साथ लेकर उसके अन्वेषण को निकला। उधर जब अकृतपुण्य की निद्रा खुली तो देखता है कि बच्चे नहीं हैं। बड़ा ही व्याकुल होकर घर की ओर आ रहा था सो दूर ही से बलभद्र को अपने सामने आता हुआ देखकर डरके मारे पर्वत पर चढ़ गया। बलभद्र उसे देख कर घर लौट आया और अकृतपुण्य वहीं गुहा के बाहिर खड़ा होगया। उसी गुहा में श्रीसुव्रत मुनिराज-वन्दना के लिये आये

हुये श्रावकों को व्रत का स्वरूप, भेद तथा फल सुना रहे थे जिससे उन्हें धर्म लाभ होसके। सो बाहर बैठा हुआ अकृतपुण्य भी सश्रद्धा सुन रहा था। उसका सार यह है—

जैसे वृक्षों का मूल उनके मजबूती का कारण होता है उसी तरह सब व्रत और धर्मका मूल उत्तम सम्यग्दर्शन है और वही त्रिभुवन पूज्य है। सप्त तत्व, नव पदार्थ, देव, गुरु और शास्त्र के शङ्कादि दोष रहित श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहते हैं। सप्तव्यसन महा पाप के कारण और नरक में ले जाने वाले हैं इसलिये बुद्धिमानों को पहले इनका परित्याग करना चाहिये। मद्य, मांस, मधु (सहत) और पञ्च उदुम्बर फल के छोड़ने को आठ मूल गुण कहते हैं। ये मूल गुण पालन किये जांय और सातों व्यसन छोड़े जांय वही सब व्रतों की मूल दर्शनप्रतिमा है।

पांच अणुव्रत, चार शिक्षाव्रत और तीन गुणव्रत ये बारह व्रत कहे जाते हैं। उन में विकलत्रय (दो इन्द्री, तीन इन्द्री और चतुरिन्द्री) तथा पञ्चेन्द्रियों की मन, बचन, काय से जो व्रती पुरुष व्रत लाभ के लिये रक्षा करते हैं यह पहला अहिंसाणुव्रत है। यह व्रत सब धर्म तथा व्रत का बीज माना जाता है।

देखो ! जिन भगवान ने जितने व्रत समिति प्रभृति के पालने का गृहस्थ तथा साधुओं के लिये जो उपदेश दिया है वह केवल इसी एक अहिंसा व्रत के लिये है।

हित रूप, परिमित, मधुर, धर्म को लिये हुये, सन्देह रहित, सब जीवों के सुख के कारण, कोमल, दूसरों की निन्दा रहित और विश्वास योग्य सत्य बचन बोलने को सत्याणुव्रत कहते हैं। यह व्रत भी विद्या, कीर्ति और पुण्य का हेतु है।

अचौर्याणुव्रत उसे कहते हैं जो पड़े हुये, भूले हुये, खोये हुये और कहीं पर रखे हुये दूसरों के धन का न लेना है। जैसे काले सर्पके पकड़ने में भय होता है उसी तरह उससे भी धर्म की रक्षा के लिये पाप से डरने वाले पुरुषों को डरना चाहिये। क्योंकि इससे दूसरे लोगों को बड़ा ही दुःख होता है। इस व्रत का फल सुखोपभोग करना है।

शुद्ध हृदय, सुशील और अपनी ही स्त्री में सन्तोष रखने वाले महात्माओं को अपने शीलव्रत की रक्षा के लिये संसार भर की स्त्रियें माता बहन और पुत्री की तरह देखनी चाहियें। यही त्रिभुवन जन महनीय चौथा ब्रह्मचर्याणु व्रत है।

बुद्धिमानों को लोभ कषाय घटाने के लिये धन,

धान्य, सुवर्ण प्रभृति दश प्रकार बाह्य परिग्रह का प्रमाण करना चाहिये। क्योंकि इस के द्वारा आशा दिनों दिन बढ़ती जाती है और चिन्ता तथा दुःख होता है। यह है भी बुरा। यह परिग्रह प्रमाण पांचमां अणुव्रत कहा गया है।

दया तथा सन्तोष के लिये योजनादि के प्रमाण से दश दिशाओं में जाने की संख्या करना है उसे दिग्विरतिव्रत कहते हैं।

जो निष्प्रयोजन हिंसादि पाप किया जाता है उस के छोड़ने को अनर्थदण्ड विरतिव्रत कहते हैं। अनर्थ-दण्ड केवल पाप का कारण है। उसके-पापोपदेश, हिंसादान, बुरा चिन्तवन, खोटे शास्त्रों का सुनना और प्रमादचर्या ये पांच भेद हैं।

अनंतकायिक कन्दमूलादि, सजीव फल पुष्पादि और आचार (अथाना) ये सब भी निंघनीय है। बुद्धि-मानों को छोड़ने चाहियें। एक वक्त ही सुख की कारण-अन्न पानादि भोग्य वस्तुओं का और बार बार उपभोग आने मे वाली वस्त्र, स्त्री प्रभृति उपभोग्य वस्तुओं का इन्द्रिय रूप चोरों के वेग को रोक कर शान्ति के लिये जो नियम करना हैं उसे भोगोपभोग नाम व्रत कहते है। यह व्रत सब सुख सामग्री का स्थान है।

शहर गली ग्राम आदि के द्वारा प्रति दिन दिशाओं में गमन करने की संख्या का नियम करने को देशाव-काशिक शिक्षाव्रत कहते हैं।

आर्त्त और रौद्रादि दुर्ध्यान के त्याग पूर्वक शान्त भाव से प्रातःकाल, मध्याह्न काल और सायंकाल में मन बचन काय की शुद्धि के द्वारा—अर्हत्सिद्ध, जिन बचन, जिन धर्म और साधुओं की वन्दना करने को सामायिक व्रत कहते हैं। यह व्रत धर्म का स्थान तथा पाप का निर्मूल नाश करने वाला है।

अष्टमी और चतुर्दशी के दिन—सब गृहारम्भ छोड़ कर और गुरु के द्वारा उपवास का नियम करके धर्म ध्यान के द्वारा काल विताने को प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत कहते हैं। इस का फल स्वर्गादि सुख सामग्री का मिलना है।

नियम पूर्वक प्रति दिन पात्र दान के लिये गृह द्वार पर खड़े होकर निरीक्षण करना और साक्षात्पात्र के मिलने पर सभक्ति दान देना यह वैयावृत्य शिक्षाव्रत है। इसके द्वारा अपना और दूसरों का हित होता है और यही सब सुख का भी कारण है। इन बारह व्रतों का निरतिचार यावज्जीवन पालन करना चाहिये। और अन्तिम समय में मोह परिग्रहादि का परित्याग कर जिन-

दीक्षा ग्रहण करनी चाहिये। जब आयु के अन्त का परिज्ञान हो जाय तब उपवासादि के द्वारा दोनों प्रकार की सल्लेखना धारण करनी उचित है। क्योंकि इसी के द्वारा तो सब व्रतादि सार्थक होकर स्वर्ग और मुक्ति सुख के कारण होते हैं। इन्हीं बारह व्रत के पालने को दूसरी प्रतिमा कहते हैं। तीसरी सामायिक प्रतिमा है और चौथी प्रोषधोपवास प्रतिमा है।

अप्रासुक और सजीव वल्कल, बीज, फल, पत्र, जल प्रभृति सचित्त वस्तुओं का करुणा बुद्धि से जो छोड़ना है उसे पांचवीं सचित्त-त्याग प्रतिमा कहते हैं। जिन भगवान ने इसे सब जीवों की हित कारक बताई है।

खाद्य, स्वाद्य आदि चार प्रकार के आहार का रात्रि-में-परित्याग करना जिससे जीव हिंसा न होने पावे और दिन में ब्रह्मचर्य व्रत रखना (अपनी स्त्री के साथ भी दिन में विषय सेवन न करना) यह छटी रात्रि-भुक्ति-त्याग प्रतिमा का लक्षण है। इस प्रतिमा का फल आधे उपवास का होता है।

जो विरक्त महात्मा पुरुष यह समझ कर कि स्त्रियें पुरीष के भरे कलश की तरह अपवित्र हैं, सो उन्हें दूर से ही छोड़ कर सर्वथा ब्रह्मचर्य पालन करते हैं यह सातवीं ब्रह्मचर्य प्रतिमा मानी गई है। यह प्रतिमा

सब सुखों की खानि है और परम्परा शिव सुख की साधन है।

जो पाप से डर कर सब प्रकार के गृह, वाणिज्य और कृषी आदि आरंभ का अपने हित के लिये मन बचन काय पूर्वक परित्याग कर देते हैं वह आठवीं आरंभ-त्याग प्रतिमा कही जाती है। इसके द्वारा सब पापाश्रव का निरोध होकर सुख मिलता है।

जो सन्तोष रूप अनुपम खड्ग के द्वारा मूर्च्छा राक्षसी का नाम शेष करके त्रिशुद्धि पूर्वक वस्त्रावशेष सब परिग्रह का त्याग कर देते हैं यही नवमी परिगृह त्याग प्रतिमा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप उत्तम रत्नों की खानि है।

मोक्ष सुख के चाहने वाले जो पुरुष—विवाह, खान, पान आदि जितने पाप के और जीवों की हिंसा के कारण घर के कर्म हैं उनमें मन बचन काय की शुद्धि पूर्वक सम्मति (सलाह) का परित्याग करते हैं उसे अनुमति-विरति दशवी प्रतिमा कहते हैं। जिनेन्द्र ने इसे सब सुखों की जननी कही है।

जो खण्ड वस्त्र के धारक केवल अपनी शरीर स्थिति के लिये—कृत, कारित और अनुमोदना रहित निर्दोष भिक्षावृत्ति दूसरों के यहां करने जाते हैं (वह

केवल इसी इच्छा से कि तपश्चरण निर्विघ्न सधता जाय) उसे उदिष्ट त्याग ग्यारमी प्रतिमा कहते हैं। यह प्रतिमा त्रिभुवन महनीय है। जो श्रावक लोग इन ग्यारहों प्रतिमाओं का संसार से उदासीन होने के लिये पालन करते हैं वे बचन अगोचर सोलह स्वर्ग पर्यन्त सुखोपभोग करके अथवा चक्रवर्ती आदि की लक्ष्मी के स्वामी होकर अन्त में नियम से मोक्ष जाते हैं।

जब अकृतपुण्य ने इन व्रतों का स्वरूप सादर सुना तो उसकी इन में बड़ी ही श्रद्धा और भावना होगई। अहा! ये व्रत बड़े ही उत्तम और सब सुख के देने वाले हैं। क्या ही अच्छा हो यदि मुझे जीवन २ में इन का लाभ होसके? अकृतपुण्य के व्रतादि की भावना रूप उत्तम परिणामों के द्वारा जो शुभ कर्म का बन्ध हुआ उसे स्वर्ग सुख का साधन कहना चाहिये।

जब मुनिराज का धर्मोपदेश हो चुका तब सब श्रावक उन्हें नमस्कार कर और "णमो अरहंताणं" इस मंत्रराज के आदि चारण का उच्चारण करते हुये शैल-गुहा के बाहर निकले।

अकृतपुण्य भी मंत्रराज का ध्यान करता हुआ उन लोगों के पीछे २ चलने लगा सो इतने में उसके पूर्व जन्म के प्रबल पाप के उदय से उसे एक

क्षुधातुर व्याघ्र ने आकर खा लिया। अकृतपुण्य मंत्र का स्मरण करता हुआ ही ससमाधि धराशायी हो गया। उसने जो पात्र दान प्रभृति शुभ कर्मों के द्वारा पुण्य सम्पादन कर रखा था वह इस वक्त काम आ गया सो उसे सौधर्म स्वर्ग में महर्धिक देव का स्थान मिला। देखो ! अकृतपुण्य का भाग्योदय जो कहां तो उसके प्रबल पाप का उदय और कहां दुर्लभ पात्रदान, व्रत में शुभ भावना तथा निधि की तरह दुर्लभ मंत्रराज की अन्त समय में प्राप्ति ? जो स्वर्ग के प्रधान कारण समझे जाते हैं। अथवा यों कह दो कि जब शुभ वा अशुभ जैसी गति होना होती है तब उसी तरह की सामग्री भी मिल जाती है।

उधर अकृतपुण्य की माता मोह के वश होकर प्रातःकाल ही बलभद्र को साथ लेकर उस के ढूंढने को निकली और धीरे २ उसी पर्वत पर जा पहुंची। वहां जाकर देखती है तो प्यारे पुत्रका आधा खाया हुआ कलेवर पड़ा हुआ है उसके देखते ही उसकी जो दशा हुई वह अवर्णनीय थी। शोक का वेग उससे न रुका सो कातर स्वर से मुक्तकण्ठ होकर रोने लगी। उधर अकृतपुण्य दिव्य उपपाद शय्या में जन्म लेकर मुहूर्त मात्र में पूर्ण यौवन से सुन्दर देव होगया। वह

सोते हुये की तरह उपपाद शय्या से उठा और स्वर्ग की बड़ी भारी सम्पत्ति, देव सुन्दरियें, अपने सामने विनम्र खड़े देवता लोग और रत्नों के बने हुये उत्तम २ महल इत्यादि विभव देखकर विचार करने लगा कि अहा! मैं कौन हूं? यह सुखमय स्थान किसका है? ये दिव्य देह कौन हैं? ये सुन्दरियें किनकी हैं? और महलादि बहुतसी विभूति किसकी है? ऐसा मेरा कौन भाग्योदय है जो मैं ऐसे सुख स्थान में लाया गया? इतना विचार करते ही उसे अवधिज्ञान हो गया जिसके द्वारा पूर्व जन्म की सब बातें जानी जा सकती हैं। उसके द्वारा यह सब महिमा उसने दानादि के फल की समझी। उसे मालूम हुआ कि मेरी माता रो रही है सो पहले ही धर्म लाभ के लिये जिन मंदिर में गया और वहां उत्तम २ द्रव्यों से तथा गीत वादित्रादि से जिनेन्द्र की महा पूजा की जो पुण्य के उपार्जन की कारण है। बाद-स्वर्गीय विभूति स्वीकार कर विमान पर चढ़ा और बहुत सम्पत्ति के साथ माता को समझाने के लिये पृथ्वी पर आया और उसे शोक से कातर देखकर बोला माता! तूं नहीं जानती कि मैं तेरा पुत्र हूं परन्तु पात्र दान और व्रतादि की शुभ भावना के फलसे तथा नमस्कार मंत्रक जपने से मुझे स्वर्गमें देव पद मिला है।

इसलिये व्यर्थ ही अब क्यों रो रही है ? इस से तो उलटा पाप का बन्ध होता है । देख ! स्वर्ग बड़ा ही उत्तम स्थान है, उसमें सदा ही सुख रहता है । बहुत उत्तम २ विभूति है जहां दुःख का नाम तक नहीं । वहां के विभव का प्रसार कुछ तुझे भी सुनाये देता हूं । संख्यात और असंख्यात योजन चौड़े पञ्च वर्ण के विमान हैं उनमें मणिमय जिनालय, महल और शैल बने हुये हैं, इच्छा के माफिक दूध देने वाली गायें हैं, कल्प वृक्ष हैं और रत्नश्रेष्ठ चिन्तामणियें हैं, लावण्य रस की खानि बहुत सी देव सुन्दरियें हैं तो यों समझ कि उत्तम २ जितनी सुख सामग्री है वह सब एक ही जगह इकट्ठी करदी गई है । जहां दुःखी, दीन, रोगी, मूर्ख, निस्तेज, कुरूप और दरिद्री तो स्वप्न में भी नहीं दीख पड़ते हैं । न दुःखप्रद ऋतु हैं, न शीत है, न उष्ण है और न रात्रि दिन का ही भेद है । थोड़े में यों कह कि वहां ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो दुःख जनक हो किन्तु सदा सुख जनक साम्यकाल रहता है उसका वर्णन करना कवि लोगों को भी जरा मुश्किल है इत्यादि सुख पूर्ण सौधर्म स्वर्ग में मैंने बहुत पुण्य से जन्म लिया है । यदि मैं यह भी कहूं कि मैं सुख सुमुद्र में निवास करता हूं तो कुछ अत्युक्ति नहीं कही जा सकती । इसलिये

माता ! अब तुम शोक छोड़ो और मोह रूप शत्रु का नाश कर देव दुर्लभ संयम स्वीकार करो तो बहुत अच्छा हो। इस प्रकार माता को समझा कर सौधर्मेन्द्र अपने स्थान पर चला गया और सुख पूर्वक रहने लगा। मृष्टदाना अपने भूत पूर्व पुत्र के बचन सुन कर बहुत आश्चर्यान्वित हुई। शोक को हृदय से हटाया और विरक्त होकर फिर विचारने लगी—देखो ! कितने आश्चर्य की बात है जो थोड़े ही दानादि शुभ कर्म करने से आज मेरा पुत्र कितने विभव का भोगने वाला हुआ है तो कौन बुद्धिमान होगा जो व्रतादि शुभ आचरणों के द्वारा ऐसे कामों में प्रवृत्त न होगा ? क्योंकि बार २ मानव जन्म का मिलना बड़ा ही दुर्लभ है। विचार के साथही मृष्टदाना ने सब गृह जंजाल छोड़ा और उसी वक्त अपने कल्याण के लिये जैनेश्वरी प्रवृजा स्वीकार की। विचारी मृष्टदाना थी तो स्त्री ही न ? सो उसे सहसा ज्ञान कैसे हो सकता था ? यही कारण है कि उसने कुछ विचार न कर अज्ञान से यह निदान कर लिया कि जन्मान्तर में भी यह मेरा प्रेम भाजन पुत्र हो। और शक्त्यनुसार जीवन पर्यन्त तपश्चरण करने लगी। अन्त में ससमाधि आयु का भोग पूर्ण कर उसी स्वर्ग में देवी हुई।

बलभद्र ने भी देव को देख कर समझ लिया कि यह सब फल धर्म का है सो, वह भी सब कुटुम्बादि को छोड़ कर दीक्षित होगया और अन्त में समाधि पूर्वक जीवन पूर्ण कर तपश्चरण के प्रभाव से उसी जगहँ देव हुआ। मुनिराज धन्यकुमार से कहते हैं— कुमार! वही बलभद्र सौधर्म स्वर्ग में बहुत काल पर्यन्त अच्छे २ सुख भोग कर अन्त में वहाँ से चल कर तुम्हारा पिता धनपाल हुआ है। मृष्टदाना का जीव तुम्हारी माता है। इसी से उस का तुम्हारे पर अधिक प्रेम है। और जो भूतपूर्व वत्सपाल (अकृतपुण्य) का जीव देव हुआ था वही तुम हो। स्वर्ग में तुमने बहुत काल तक उत्तम २ सुख भोगे हैं और अपनी सुन्दरियों के साथ २ जिन पूजादि शुभ कर्म भी बहुत किये हैं यही कारण है कि यहां भी तुम्हें वही अपूर्व सुख है और जो बलभद्र के दुष्ट सात पुत्र थे वे ये ही सब देव-दत्त प्रभृति सात भाई हैं। सो उसी पूर्व बैर के सबन्ध से तुम से ईर्षा करते हैं, तुम्हें मारना चाहते हैं। और पैंड २ में जो तुम्हें खजाने मिलते और विघ्न नष्ट होते हैं यह सब पात्रदान का फल है। बस यही तुम्हारी जीवनी का सार है।

कुमार! यहतो तुमने अच्छी तरह जान लिया

कि—तुम्हें जो यह पूर्ण लक्ष्मी का और सौन्दर्यता का लाभ हुआ है वह केवल पूर्व जनम के सुपात्र दान, व्रत में उत्तम भावना और अर्हद्भगवान के नाम स्मरण का फल है। इसलिये अब भी तुम्हें उचित है कि उपर्युक्त शुभ कर्मों के द्वारा धर्म सेवन करो। देखो! यही धर्म तुम्हारे अभिष्ट का देने वाला है।

अन्त में कहना यह है कि—

जब तक तुम संसार में रहो धर्म मत भूलो, धर्म का आश्रय लो, धर्म के द्वारा धर्म के अपूर्व सार को समझो, धर्म के लिये अभिवन्दना करते रहो, धर्मको छोड़ कर किसी दूसरे की सेवा मत करो, धर्म की मूल करुणा है उसे सदा याद रखो, धर्म में निश्चलचित्त रहो और धर्म ही से यह प्रार्थना करो कि-हे धर्म! तू मेरी रक्षा कर।

इति श्रीसकलकीर्त्ति मुनि रचित धन्यकुमार चरित्र में धन्यकुमार के जन्मान्तर का वर्णन नाम पांचवां अधिकार पूर्ण हुआ॥ ५॥



छटा अधिकार ।

त्रिजगन्नाथनाथेभ्यो गरिष्ठेभ्यो महागुणैः ।
परमेष्ठिभ्य आत्माप्त्यै विश्वार्च्येभ्यो नमोऽन्वहम् ॥

धन्यकुमार, मुनिराज रूपी चन्द्रमा के द्वारा उत्पन्न हुये, जन्म, जरा और मरण के नाश करने वाले तथा शिव सुख के कारण धर्मामृत का पान कर बहुत सन्तुष्ट हुआ और साथ ही अपनी बुद्धि को धर्म में दृढ़ की । बाद—मुनिराज को नमस्कार कर राजगृह जाने के लिये रवाना हुआ सो धीरे २ वहीं पहुंच कर शहर के बाहर एक बगीचा देखा । रास्ते की थकावट मिटाने के अभिप्राय से उसके भीतर चला गया । जाकर देखता है तो सारा बगीचा सूखा पड़ा हुआ है । यहां पर प्रसंगानुसार कुछ बगीचे के सम्बन्ध की कथा लिख दी जाती है ।

इस बाग के मालिक का नाम था कुसुमदत्त । उस का जन्म वैश्य कुल में हुआ था । यह राज काम करने वाले जितने माली लोग थे उन सब का स्वामी था । उसे सब मानते थे । जब उस ने देखा कि बाग सारा सूख गया है सो उसे काटना चाहा किन्तु एक दिन उसे अवधि ज्ञानी मुनिराज के दर्शन हो गये ।

कुसुमदत्त ने उन्हें नमस्कार कर पूछा स्वामी ! मेरा उपवन सूख गया है सो वह फिर भी कभी फलेगा या नहीं ? उत्तर में मुनिराज ने कहा वैश्यवर ! कोई पुण्यात्मा महा पुरुष दूसरे देश से आकर इस बाग में प्रवेश करेगा तभी यह फिर से फल पुष्पादि से समृद्ध होने लगेगा। कुसुमदत्त मुनिराज के कहे अनुसार निश्चय कर तभी से प्रतीक्षा करने लगा सो आज धन्यकुमार के प्रवेश मात्र से सूखे सरोवर निर्मल जल से भर गये और वृक्ष फल पुष्पादि से नम्र हो गये । सच है पुण्य के प्रभाव से सब कुछ हो सकता है । धन्यकुमार वहीं जिन भगवान का ध्यान कर और सरोवर में से निर्मल जल पीकर किसी वृक्ष के नीचे बैठ गया। जब यह हाल कुसुमदत्त ने सुना तो उसे झट से मुनिराज के बचन याद हो आये । मुनिराज के चरणों को परोक्ष नमस्कार कर बाग में आया और कुमार को बैठा हुआ देख कर उसे नमस्कार कर पूछा—बुद्धिमान ! क्या मुझे कुछ बातें बताकर कृतार्थ करेंगे ? वे ये हैं—आप कौन हैं ? किस सुकुल में आप का अवतार हुआ है और कहां से आप चले आ रहे हैं ? कुमार ने कहा—मैं वैश्य पुत्र हूं, दूसरे देशों में घूमता हुआ इधर आ निकला हूं और मैं जैन धर्मी हूं ।

कुसुमदत्त ने कहा यदि ऐसा है तो मैं भी तो जैनी हूं आप का और हमारा धार्मिक सम्बन्ध है इसलिये हमारे यहां अतिथी होना स्वीकार करिये। धन्यकुमार ने यह बात मान ली। बाद—कुसुमदत्त, धन्यकुमार को बड़े सत्कार के साथ घर लिवा ले गया और उस की प्रेम तथा भक्ति के साथ सेवा करने के लिये अपनी स्त्री से बोला—यह मेरी बहन का पुत्र है इसलिये इस का अतिथी सत्कार अच्छी तरह होना चाहिये। कुसुमदत्त की स्त्री ने यह समझ कर कि यह भावी मेरा जवांई होने वाला है इसलिये धन्यकुमार को स्नान और भोजन वगैरह बड़े प्रेम के साथ करवाया।

कुसुमदत्त की एक सुन्दरी कन्या थी। उस का नाम था पुष्पावती। सो वह धन्यकुमार के सौन्दर्य को देख कर उस पर मोहित होगई। दूसरे दिन उस ने यह विचार कर कि देखूं यह कितना बुद्धिमान है? सो उस के विज्ञानादि गुण की परीक्षा के लिये धन्यकुमार के सामने कुछ सुन्दर २ फूल और सूत रख दिया। कुमार बुद्धिमान तो था ही सो उसने उन फूलों की अपनी चातुरी से बहुत सुन्दर एक माला गूंथ दी। उन दिनों राजगृह के श्रेणिक महाराज स्वामी थे। उन की कान्ता थीं चेलनी और गुणवती नाम की

पुत्री थी। पुष्पावती उसी राजकुमारी के लिये प्रति दिन फूलों की माला बनाकर ले जाया करती थी। किन्तु आज वह धन्यकुमार की बनाई हुई माला लेकर गई। उसे देखकर राजकुमारी बोली पुष्पावती! इतने दिन तू हमारे घर क्यों नहीं आई? उसने उत्तर दिया-सखि! क्या करूं मेरे घर पिता जी की बहन का पुत्र आया हुआ है सो उसी की सेवा में लगी रहती हूं। यही कारण मेरे न आने का है। जब राजकुमारी की आँख उस माला पर पड़ी तो उसने पुष्पावती से पूछा-आज तो माला बड़ी ही सुन्दर दिखाई पड़ती है कह तो किस ने गूंथी है? पुष्पावती ने कहा—यह उसी सुचतुर भाग्यशाली का काम है। सुनकर राजकुमारी कुछ हँस कर बोली तूं तो बड़ी ही भाग्यवती है जो ऐसे उत्तम वर की तुझे सङ्गति मिलैगी।

एक दिन धन्यकुमार बाजार में जा रहा था सो चलते २ अपनी इच्छा से किसी सेठ की दुकान पर बैठ गया। उस वक्त सेठ महाशय को व्यापार में बहुत कुछ फायदा हुआ। इसका कारण उन्होंने बैठे हुये पुण्यात्मा धन्यकुमार को समझ कर उस से कहा-मित्र! मेरी एक सुन्दरी कन्या है उसका विवाह तुम्हारे ही साथ करूंगा। ठीक है—धर्मात्माओं को धर्म के द्वारा सब

जगहँ लाभ हुआ करता है । दूसरे दिन धन्यकुमार शालिभद्र सेठ की दुकान पर जाकर बैठ गया सो उसे भी व्यापार में फायदा हुआ उस ने भी इस का कारण धन्यकुमार ही को समझ कर कहा कि—भद्र ! सुभद्रा नाम की एक मेरी बहन की लड़की है उसका विवाह तुम्हारे साथ किया जावैगा ।

वहाँ एक राज श्रेष्ठी रहता था । उस का नाम था श्रीकीर्त्ति । एक दिन उस ने सारे शहर में यह ढिंढोरा पिटवाया कि "जो वैश्यपुत्र तीन काकिणी (दमड़ी) के द्वारा एक ही दिन में एक हजार दीनार पैदा करके मुझे देगा उस के साथ अपनी धनवती पुत्री का विवाह कर दूंगा" ढिंढोरे को सुन कर उसी वक्त धन्यकुमार ने काकिणी (दमड़ी) ले ली । उस के द्वारा उस ने माला लटकाने के तृण खरीदे और उन्हें माली लोगों को देकर बदले में कई रंग के उन से फूल ले लिये । उन फूलों की अपने ही हाथों से बहुत सी सुन्दर २ मालायें बना कर उन्हें, खेलने के लिये बन में जाते हुये राजकुमारों को दिखलाई । देखकर राजकुमारों ने मालाओं का जब मूल्य पूछा तो धन्यकुमार ने एक हजार दीनार कहा । जब पुण्य का उदय होता है तब कहीं न कहीं से अपनी

इच्छा के अनुसार कारण भी जरूर मिल जाते हैं। ठीक यही धन्यकुमार के लिये भी हुआ सो उन राज पुत्रों ने एक हजार दीनारें देकर वे सब मालायें खरीद कर लीं। धन्यकुमार ने दीनारें ले जाकर सेठ को देदी। सेठ ने अपना बचन पूरा करने के लिये धन्यकुमार के साथ अपनी कन्या का विवाह कर दिया। इसी तरह बुद्धिमान धन्यकुमार की बहुत प्रशंसा सुन कर और गुप्त रीति से उस के रूप को देख कर राजकुमारी गुणवती, उस पर जी जान से मुग्ध होगई। दिनों दिन उसी की चिन्ता से उस का शरीर भी सूकने लगा।

एक दिन धन्यकुमार, मंत्री—आदि बड़े २ लो[illegible] के पुत्रों के साथ जूवा खेलता था सो उसने उन लोगों को बात की बात में जीत कर अभिमान रहित कर दिये। सबों को। वहीं पर श्रेणिक महाराज का पुत्र अभयकुमार भी बैठा हुआ था। उसे अपनी चतुरता का बड़ा घमण्ड था। उस के साथ कितने और भी धनुर्धारी योद्धा थे। सो वह धन्यकुमार के साथ बाण के द्वारा लक्ष्य वेधने के लिये झगड़ा करने लगा बाद चन्द्रक यंत्र का वेधना निश्चित किया गया। यद्यपि इस का वेधना हरेक के लिये बड़ा ही कठिन है तौ भी कुमार ने पुण्य प्रभाव से उसे वेधकर देखते २ राजकुमार को हरा दिया। यह

अपमान उन्हें सहन नहीं हुआ सो सब मिल कर उसके साथ बैर करने लगे और किसी तरह उस के मारने का उपाय करने लगे। विचारा कुमार धर्मात्मा और सरल हृदय था सो उसे इन लोगों का कपटभाव मालूम न हुआ।

उधर श्रेणिक को पुत्री के दिनों दिन दुबली होने का जब कारण मालूम हुआ तो विचार कर अपने पुत्र वगैरह से पूछा—देखो! यह कुमार रूपवान और गुणी है। इस के साथ गुणवती का विवाह किया जाना उचित है या नहीं? उन में से अभयकुमार आगे होकर ईर्षा से कहने लगा कि वह विदेशी है उस के कुल तथा जाति का कुछ ठिकाना नहीं! क्या मालूम अच्छे हैं या बुरे? इसलिये कन्या का देना मेरी समझ के अनुसार सर्वथा बुरा है। अभयकुमार का कहना सुनकर श्रेणिक ने खुले शब्दों में कहा कि देखो! गुणवती के दिल में तो उसी की चाह है और इसी से वह दिनों दिन कामाग्नि से जली जा रही है। यदि ऐसी हालत में भी उस का विवाह न किया जाय तो उस के जीने का क्या उपाय है? अभयकुमार से अखीर में न रहा गया सो उस ने साफ२ कह ही तो दिया। पिताजी! इस का यह उपाय हो सकता है कि

जबतक वह जीता रहेगा तभीतक गुणवती का काम जनित दुःख भी बढ़ेगा ही। इसलिये................ सुनकर श्रेणिक ने घृणा के साथ कहा वह विचारा निरपराध है उस को मैं कैसे मरवा सकता हूं ? यह न्याय नहीं किन्तु अन्याय है । अभयकुमार ने फिर कहा—अच्छा, आप कुछ न करैं हम ही इस के मारने का कोई उपाय कर इस का अभिमान दूर करेंगे । उत्तर में श्रेणिक ने किसी तरह पुत्र को समझाने के लिये कहा । वह क्या उपाय है जिस से इसे मार सकोगे ? राजकुमार बोला—शहर के बाहर राक्षसों का एक स्थान है । पहले उस में कितने ही लोग राक्षस के हाथ से मारे गये हैं इसलिये "जो धीर पुण्यवान इस स्थान के भीतर जायगा उसके लिये आधा राज्य तथा पुत्री दी जायगी" शहर भर में ऐसा ढिंढोरा पिटवाना चाहिये सो उसे सुनकर वह नियम से अभिमान में आकर उस मकान के भीतर जायगा सो ही मारा जावेगा। पुत्र के विचार माफिक श्रेणिक ने ढिंढोरा पिटवा दिया । धन्यकुमार ने उसे सुना फिर भला मकान के भीतर गये विना उसे कैसे चैन पड़ सकता था ? उसे बहुत लोगों ने मना भी किया परन्तु उस ने एक की न सुनी और दो पहर के

वक्त खेलता हुआ विना आयास के जैसे अपने घर में जाना होता है उसी तरह निडर होकर राक्षस भवन में चला गया । धन्यकुमार को देखते ही राक्षस उल्टा शान्त होगया और सामने आकर उसे नमस्कार किया । बाद—सत्कार पूर्वक सुन्दर आसन पर बैठाकर विनय से बोला—विभो ! आप मुझे अपना दास समझें। मैंने इतने काल तक खजाञ्ची होकर आप के इतने बड़े भारी मकान की और धन की रक्षा की । अब आप आगये हैं सो अपना धन सम्हाल लीजिये । यह आप ही के पुण्य का कमाया है । ऐसा कहकर सब धन धन्यकुमार के सुपुर्द कर दिया। और जब आप मुझे याद करेंगे तब हाजिर हो सकूंगा, मैं आप का दास हूं इतना कह कर अन्तर्हित होगया। धन्यकुमार ने शुभ ध्यान पूर्वक रात्रि वहीं बिताई। सच कहा है पुण्यवानों को सब जगहँ लाभ ही लाभ हुआ करता है। उधर जब उन कन्याओं को धन्यकुमार के राक्षस भवन में जाने का हाल मिला तो सबों ने यह दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली कि जो गति धन्यकुमार की होगी वही हमें भी मंजूर है । रात्रि पूर्ण हुई सबेरे का उजेला चमकने लगा। इतने में धन्यकुमार भी प्रातः कालीन सामायिकादि क्रिया करके बहुत खुशी

के साथ मकान से बाहर निकल कर शहर की ओर आने लगा। उसे धन लेकर शहर की ओर आते हुये देख कर राजा वगैरह को बड़ा ही आश्चर्य हुआ। वे अपने दिल में विचारने लगे कि यह साधारण पुरुष नहीं है किन्तु नर केसरी है। इसे कोई नहीं जीत सकता। यह बड़ा भारी पुण्य पुरुष है। यही समझ श्रेणिक और अभयकुमार आदि आधी दूर तक उस के सामने गये और उसे बहुत सन्मान पूर्वक लाये। बाद-राज महल में लिवा जाकर भूषण वस्त्रादि से उसका सत्कार किया और पूछा-प्रेमपात्र! कहो तो तुम किस उत्तम कुलरूप आकाश के विशाल चन्द्रमा हो और अकेले ही किस काम के लिये यहां आये हुये हो? उत्तर में धन्यकुमार ने कहा—मैं उज्जयिनी में रहता हूं और वैश्यकुल में मेरा जन्म हुआ है। तीर्थयात्रा करता २ इधर आगया हूं। सुनकर श्रेणिक बहुत खुश हुये और उसी समय बहुत धन खर्च कर अपने ही मकान में विवाह मण्डप तयार करवाया और बहुत कुछ समा-रोह के साथ गुणवती आदि सोलह कन्याओं का धन्यकुमार के साथ विधि पूर्वक विवाह कर सानन्द उसे अपना आधा राज्य दे दिया। धन्यकुमार को मनुष्य और देव आदि सब कोई मानने लगे।

कुछ दिनों बाद—धन्यकुमार ने वैश्य आदि सभी जाति के मनुष्यों से युक्त एक सुन्दर नगर बसाया और वहां का राजा भी आप ही हुआ। बड़े २ राज पुत्र उसके चरणों की सेवा करने लगे। धन्यकुमार सुख पूर्वक राज्य पालन करने लगा। कुमार समय २ पर जिन धर्म की बड़ी प्रभावना किया करता था। इस प्रकार धन्यकुमार का दर्शन उज्जयिनी में राजा मंत्री आदि सभी लोगों को बड़ा ही सुख कर होता था। परन्तु खेद है कि उस के माता पिता तो दिन रात दिल के भीतर ही भीतर इस के वियोग से जल रहे थे।

अब कुछ धन्यकुमार के माता पिता का हाल सुनिये—जब धन्यकुमार वहां से चला आया उसी दिन घर के रक्षक देवता लोगों ने उस के माता पिता और भाइयों को निकाल घर बाहिर कर दिये। वे सब वहां से निकल कर फिर अपने पुराने घर पर गये। इस वक्त इन की हालत बड़ी ही बुरी थी। ये ऐसे मालूम देते थे जैसे दवाग्नि से जले हुये वृक्ष हों, बड़े ही शोक से पीड़ित तथा दुःख के मारे विमूढ़ हो रहे थे। उस वक्त शहर के लोग बड़े ही आश्चर्य के साथ परस्पर में कहते थे कि देखो! ये लोग कितने निर्दयी और पापी हैं इन का हृदय वज्र की तरह बहुत कठोर है

जो ऐसे सुपुत्र के चले जाने पर भी अभीतक जीते हैं अथवा यों कह लो कि दुःखी पुरुषों के पास मृत्यु भी आकर नहीं फटकती है क्योंकि उन के बड़ा ही खोटे कर्मों का उदय बना रहता है।

उन लोगों के अन्याय करने से थोड़े ही दिनों में जितना पुराना और नवीन धन था वह सब जाता रहा और कुपुत्रों के तीव्र पाप से इन की यहां तक दशा बिगड़ी कि खाने और पेट भरने तक की मुश्किल पड़ने लगी। तब धनपाल किसी काम के बहाने से राजगृह निवासी अपनी बहन के लड़के (जो अधिक धनी था) शालिभद्र के पास गया। कहना चाहिये कि—अब पीछा उस का भाग्य फिरा। वहां जाकर धन्यकुमार के मकान के नीचे बैठ कर लोगों से शालिभद्र का मकान पूछने लगा। मकान के ऊपर ही धन्यकुमार बैठा हुआ था सो उस ने देख कर उसी वक्त पहचान लिया कि ये मेरे पिता हैं। झट से नीचे उतरा और पास आकर उनके चरणों में गिर पड़ा। विचारा पिता उस समय फटे टूटे वस्त्र पहरे हुये था, गरीब के समान जान पड़ता था, सेठ होने पर भी दरिद्री और उसमें कुछ भेद न था। राज कर्मचारी और पुरवासी लोग यह घटना

देखकर बड़ा ही आश्चर्य करने लगे। धनपाल यह घटना देख कर बोला—नराधीश ! तुम पुण्यात्मा हो, तुम्हारा अखण्ड प्रताप है इसलिये सुख पूर्वक बहुत काल तक पृथ्वी का पालन करो। मैं एक दरिद्री वैश्य हूं और तुम पृथ्वी के मालिक राजा हो इसलिये उल्टा मुझे नमस्कार करना चाहिये न कि तुम मुझे करो। सुनकर धन्यकुमार बोला-आप ही नमस्कार के पात्र हैं। कारण आप मेरे पूज्य पिता हैं और मैं आप का छोटा पुत्र हूं। सुनते ही धनपाल के नेत्रों से मारे आनन्द के आंसू गिरने लगे। पुत्र को गले से लगा कर वह रोने लगा। धन्यकुमार की भी यही दशा थी। उन्हें मन्त्री आदि लोगों ने बहुत कुछ समझाया तब भी प्रेम के आंसू का वेग उन से रुक न सका। बाद—किसी तरह राजमहल में गये। धन्यकुमार ने पिता की वस्त्राभरण और भोजनादि से सेवा कर भाईयों का चरित्र, अपने आने का हाल और राज्य के मिलने आदि की सब कुछ कथा कह सुनायी। बाद—माता और भाई बन्धुओं की कुशल पूछी। उत्तर में धनपाल बोला—वे सब बड़े ही मन्दभागी हैं, इस समय उनका जीवन बुरी दशा में है, पीछे पुराने ही घर में रहने लगे हैं और पास कुछ भी पैसा नहीं है जो उसके द्वारा निर्वाह

कर सके। जब तुम वहां से चले आये उसी दिन रात के वक्त घर के रक्षक देवता लोगों ने हम लोगों को निकाल दिये थे इसी से पीछा पुराने घर का आश्रय लेना पड़ा। हम लोगों में एक तुम ही पुण्यवान थे सो तुम्हारे निकलते ही सब धन भी तुम्हारे साथ २ बिदा होगया। आज मैं अपने को बड़ा ही भाग्यशाली समझता हूं जो बहुत दिन के बाद फिर तुम्हें देख पाया। पिता के बचन सुनते ही धन्यकुमार ने अपने नौकरों को खूब वस्त्र वगैरह देकर माता भाई आदि को लिवा लाने के लिये भेजे।

जब प्रभावती आदि को धन्यकुमार के समाचार मिले तो उन्हें बड़ी खुशी हुई वे सब उसी समय वाहनों पर सवार होकर राजगृह आये। उनके आने का हाल सुनकर कुमार अपने साथ और भी कितने राजाओं को लेकर भक्ति पूर्वक उन के लिवा लाने के लिये आधी दूर तक सामने आया। रास्ते में अपनी माता को आती हुई देखकर बहुत विनय के साथ धन्यकुमार ने मस्तक झुका कर नमस्कार किया। माता भी पुत्र को देखते ही बहुत कुछ खुश हुई और उसे गले लगा कर शुभाशिर्वाद देने लगी। भाई लोग धन्यकुमार को देखकर हृदय में बहुत शर्मिन्दा हुये। यहां तक कि मुहँ तक

ऊँचा करना उन्हें मुश्किल होगया। धन्यकुमार उन की यह हालत देखकर बोला—भाइयो ! यह आप ही की दया है जो मुझे इतनी राज्य विभूति मिली है । आप लोग सन्देह छोड़े और हृदय का खटका निकाल कर शुद्ध चित्त हो जावें । क्योंकि कर्म के उदय से अच्छा बुरा तो हुआ ही करता है । धन्यकुमार का सीधा पन देख कर उन्हों ने उस की बहुत प्रशंसा की और अपने अपराध की क्षमा करा कर—अपने को धिक्कार देने लगे। बाद—धन्यकुमार अपने कुटुम्बियों को लेकर बहुत ठाठ बाट के साथ शहर में होकर अपने मकान पर आया। वहां पर उन सब का स्नान भोजन वस्त्र गहने आदि से बहुत सत्कार किया गया। बाद—धन्यकुमार ने गृहस्थ धर्म के निर्वाह के लिये उन्हें सुवर्ण, रत्न, वाहन और ग्राम आदि सभी कुछ उचित वस्तु खुशी के साथ भेट दी जिस से वे अपना निर्वाह कर सके ।

उपसंहार—

राज्य आदि विभव का मिलना, देवता और मनुष्यों के द्वारा सत्कार का होना और बन्धु लोगों के साथ २ बहुत कुछ सुख के कारण उत्तम २ भोगों का भोगना यह सब पुण्य की महिमा है । इसलिये जो सुचतुर हैं उन्हें जरूर ही पुण्य कर्म करना चाहिये ।

देखो ! धर्म गुणों का खजाना और सबका भला करने वाला है। बुद्धिमान लोग धर्म की सेवा करते हैं, धर्म के द्वारा शुभ गति होती है, धर्म मोक्ष का कारण है इसलिये नमस्कार के योग्य है, धर्म को छोड़ कर कोई उत्तम वस्तु नहीं दे सकता, धर्म का बीज सम्यग्दर्शन है, धर्म में मैं भी अपने चित्त को लगाता हूं, हे धर्म ! अब तुझे भी उचित है कि संसार में गिरने से मुझे बचावे ।

इति श्रीसकलकीर्त्ति मुनि रचित धन्यकुमार चरित्र में धन्यकुमार के राज्यलाभ का वर्णन नाम छठा अधिकार पूर्ण हुआ ॥ ६ ॥

सातवां अध्याय ।

वीतरागञ्जगन्नाथांस्त्रिजगद्भव्यवन्दितान् ।
विश्वप्राणिहितान्वन्दे शिरसा परमेष्ठिनः ॥

एक दिन धन्यकुमार के मन में यह विचार उठा कि—किसी तरह धन सफल करना चाहिये सो उस ने बड़े २ ऊंचे जिन मन्दिर बनवाना आरम्भ किया और उन में विराजमान करने के लिये सुवर्ण और रत्नों की सुन्दर प्रतिमायें बनवाईं । चारों संघ को बुलवाकर बहुत कुछ उत्सव के साथ प्रतिष्ठा करवाई । खूब धन खर्च किया । ये सब काम उस ने केवल अपने भले के लिये किये थे । धन्यकुमार प्रति दिन अपने घर के जिन चैत्यालय में बहुत कुछ भक्ति तथा महोत्सव के साथ पूजन किया करता था और दूसरों को भी करने के लिये प्रेरणा करता था। क्योंकि जिन पूजा सब सुख की देने वाली है । जब मुनियों के आहार का वक्त आता तब स्वयं अपने घर के आगे खड़ा होकर मुनियों की बाट देखा करता और पात्र का समागम होने पर विधि पूर्वक बड़े विनय भाव से पवित्र आहार देता । भव्य पुरुषों के साथ सदा निर्ग्रन्थ साधुओं की भक्ति सेवा पूजा वन्दना किया करता ।

उन के मुख से श्रावक धर्म तथा मुनि धर्म का स्वरूप और तत्वों का व्याख्यान सुनता क्योंकि उसे विरागता बड़ी ही प्रिय थी। जिस दिन अष्टमी तथा चतुर्दशी होती उस दिन सब राज काज छोड़ कर नियम पूर्वक उपवास किया करता। क्योंकि उसे अपने पाप कर्म के नाश करने की बहुत चाह रहती थी। मुनि की तरह निराकुल होकर तीनों काल समता भाव पूर्वक शुद्ध सामायिक करता। उस ने शंकादि दोषों को अपने आत्मा से हटा कर और साथ ही निःशंकितादि आठ गुणों को धारण कर सम्यग्दर्शन की निर्मलता अच्छी तरह करली थी। क्योंकि यही शुद्धि शिव सुख की कारण है। यह बात सब कोई मानेंगे कि ज्ञान, तीन लोक के पदार्थ का प्रगट करने के लिये दीपक है सो धन्यकुमार भी अपने अज्ञान के हटाने के लिये बड़े २ बुद्धिवानों के साथ ज्ञान का अभ्यास सदा किया करता था। अपने योग्य श्रावक के व्रतों का निरतिचार हर वक्त पालन करता था। दिल में धर्म तथा धर्म के चिह्नों का मनन किया करता था और सुख के लिये हरेक को धर्म का उपदेश दिया करता था। अपने शरीर के द्वारा जहां तक उस से बनता था धर्म पालन करने में किसी तरह की कमी नहीं

रखता था। थोड़े में यों कह लीजिये कि धन्यकुमार मन बचन काय और कृत कारित अनुमोदना से धर्म मय होगया था। वह यह बात अच्छी तरह जानता था कि धर्म से धन मिलता है, धन से काम सुख मिलता है और काम के छोड़ने से अनन्त सुख का समुद्र मोक्ष मिलता है। इसलिये अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिये मन बचन काय से धर्म का सेवन करने में लगा रहता था। यह धर्म ही की शक्ति समझनी चाहिये जो धन्यकुमार को सब सुख की कारण राज्य लक्ष्मी मिली थी। वह हरेक तरह के उत्तम २ सुख के अनुभव से सुख समुद्र में यहां तक डूबा कि समय कितना बीत गया उस की भी उसे कुछ खबर न रही।

एक दिन धन्यकुमार ने अपनी सुभद्रा नाम स्त्री का मुख कुछ मलिन देखकर उस से पूछा—प्रिये! तुम क्या यह बात कह सकोगी कि आज तुम्हारा मुख किस लिये मलिन है? जाना जाता है तुम्हें किसी शोक ने धर दबाया है। वह बोली-स्वामी! मेरा भाई शालिभद्र बहुत दिनों से धन कुटुम्ब शरीर और सुख-सामग्री से उदासीन होगया है और सदा वैराग्य का चिन्तवन पूर्वक घर ही में तप का अभ्यास किया करता है परन्तु आज यह मालूम हुआ कि वह जिन दीक्षा

लिया चाहता है। विभो! उसे मैं बड़ी ही प्रेम की निगाह से देखा करती हूं सो उस का भावी वियोग सुनकर बड़ी दुःखिनी हो रही हूं।

नाथ! आप के राज्य में मुझे सब तरह का सुख मिलने पर भी केवल भाई का विरह दुःख ही दुःखिनी कर रहा है। यही मेरे शोक का हेतु है। सुनकर धन्यकुमार बोला—बस! यही दुःख का कारण है? अभी ही जाकर मैं उन्हें सुमधुर बचनों से समझाये देता हूं जिस से हम सब को सुख होगा तुम शोक छोड़ो! उसे यों समझाकर धन्यकुमार उसी वक्त अपने साले के घर गया और उसे उदासीन देखकर बोला-प्रियवर! आज कल आप हमारे घर पर क्यों नहीं आते हो? उत्तर में शालिभद्र ने कहा-मान्य! मैं क्या करूं संयम (मुनिपद) बड़ा ही कठिन है सो उसी की सिद्धि के लिये तपश्चरण का अभ्यास यहीं रह कर किया करता हूं इसी से आपके घर न आ सका। धन्यकुमार ने कहा अच्छा, यदि तुम्हें दीक्षा ही लेना है तो जल्दी करो। यहां तप का अभ्यास करने से क्या लाभ हो सकेगा? अरे! पहिले भी वृषभ आदि बहुत से महात्मा वर्षादि योग के धारण करने वाले हुये हैं और तप के द्वारा मोक्ष गये हैं क्या

उन्होंने भी घर में अभ्यास किया था ? नहीं ! किन्तु मेघ वगैरह कुछ भी थोड़ा सा वैराग्य का कारण देखकर असंख्य वर्षों तक भोगा हुआ भी राज्य-सुख देखते २ निडर होकर छोड़ दिया और तप के द्वारा कर्मों का नाश कर मोक्ष में चले गये। वास्तव में उन्हें ही पुरुषोत्तम कहना चाहिये। तुम डरपोंक जान पड़ते हो इसीलिये तप का अभ्यास करते हो। देखो ! मैं अभी ही इस कठिन दीक्षा को भी विना अभ्यास ही के ग्रहण किये लेता हूं। तुम नहीं जानते कि संसार का नाश करने वाला पापी काल न मालूम कब तुम्हें वा मुझे अथवा औरों को लिवा ले जाने के लिये चला आवेगा ? देखो ! काल गर्भ में रहने वाले, जवान, दीन, दुःखी, सुखी, धनी और निर्धन आदि किसी की कुछ पर्वाह न कर सभी को अपना शिकार बना लेता है। इसलिये भाग्यवश जब तक वह न आने पावें उस के पहिले ही जिन दीक्षा लेकर हित के मार्ग में लग जाना चाहिये। क्योंकि जब तक जरा राक्षसी का शरीर पर अधिकार न जमा है तब ही तक मोक्ष सुख का उपाय भी वन सकेगा और जहां बुढापा शरीर में घुस गया फिर तप और व्रत का पालन कोसों दूर हो जाता है। इसलिये जो लोग संसार से छूटना

चाहते हैं उन्हें जब तक इन्द्रियें अपना २ काम अच्छी तरह कर सकती हैं तभी तक संयम ग्रहण कर लेना उचित है। क्योंकि जिन लोगों की इन्द्रियें ठण्डी पड़ जाती हैं वे फिर संयम के योग्य नहीं हो सकते और बिना संयम के तप व्रत वगेरह सार्थक नहीं कहे जा सकते। मनुष्य तो यह विचार करता रहता है कि आज वा कल अथवा कुछ दिनों बाद तप और व्रत धारण करूंगा और काल है सो पहिले ही आ धमकता है। यह जीवन चारे के अग्रभाग पर ठहरी हुई ओस की बिन्दु की तरह जल्दी नाश होने वाला है और युवावस्था बादल की तरह देखते २ नाश हो जायगी। लक्ष्मी वेश्या की तरह चपल और बुरी है। चौर शत्रु और राजा वगैरह सदा इस के छीनने की फिराक में रहते हैं, दुःख की देने वाली है और दुःख ही के द्वारा कमाई जाती है। राज्य धूल की समान बुरा, सब पाप का कारण, चंचल और हजारों चिन्ताओं से भरा हुआ है कौन बुद्धिमान ऐसे राज्य का पालन कर सुखी होगा? स्त्रियें मोह की बेलि, सब अनर्थ अन्याय की कारण और दुष्ट होती हैं। घर में रहना पाप और आरंभ का स्थान है। शरीर रुधिरादि सात धातुओं से भरा; अपवित्र दुर्गन्धित और इन्द्रिय

रूपी चोरों के रहने का घर है इसे कौन भला चाहने वाला भोगों के द्वारा पुष्ट करना चाहेगा ? भोग हर वक्त भले ही भोगे जांय, परंतु हैं असन्तोष और पाप ही के कारण । अरे ! ये होते तो स्त्री के अपवित्र शरीर ही से न ? फिर क्यों कर बुद्धिमान इनके द्वारा सुख की चाह कर सकता है ? दुःख का समुद्र और विषम यह संसार अनन्त है चार गतियों में भ्रमण करना इस का सार है कोई कहे तो, बुद्धिमानों को प्रेम करने के लिये इस में क्या उत्तम वस्तु है ?

इत्यादि हित कर और वैराग्य के बचनों द्वारा धन्यकुमार ने शालिभद्र के रोम २ में वैराग्य ठसा कर उसे मुनि पद के लिये उत्तेजित कर दिया और उस से भी कहीं बढ़ा चढ़ा स्वयं वैरागी होकर जल्दी ही अपने घर पर गया। शालिभद्र धन्यकुमार का बड़ा भारी साहस देख कर सब धन और घर बार छोड़ कर उस के पीछे ही घर से निकला। धन्यकुमार ने घर पर आकर राज्य भार तो अपने बड़े पुत्र धनपाल को सौंपा और आप श्रेणिक, माता पिता भाई और बन्धुओं से क्षमा करा कर शालिभद्र तथा और भी कितने लोगों के साथ श्रीवर्द्धमान भगवान के समव-शरण में गया। वहां त्रिभुवन के स्वामी जगद्गुरु श्री-

महावीर भगवान की तीन प्रदक्षिणा देकर उन्हें भक्ति पूर्वक विनीत मस्तक से नमस्कार किया और उत्तम २ द्रव्यों के द्वारा उनकी पूजा कर स्तुति करना आरम्भ की।

विभो! आप संसार के स्वामी हैं, सब का हित करने वाले हैं, बड़े भारी गुरू हैं, विना कारण जगत के बन्धु हैं और आप ही जीवों को संसार के दुःखों से छुटाने वाले हैं। नाथ! आज आपके चरण कमलों के दर्शन कर मेरे नेत्र सफल हुये और हाथ पूजन करने से। स्वामी! आपके दर्शन के लिये यहां आने से पांव भी कृतार्थ हुये और नमस्कार करने से जीवन, जन्म तथा मस्तक पावन हुआ। पूज्यपाद! आज मेरी जिह्वा आप का गुणों का गानकर सार्थक हुई और गुणों का ध्यान, चिन्तवन करने से मन पवित्र हुआ। अनाथ-बन्धो! आज यह शरीर भी सफल है जो आप के चरणों की इसने सेवा की और हम भी धन्य हैं जो आप की भक्ति से सुगन्धित हुये।

भगवन! यद्यपि यह संसार अपार है परन्तु आप के आश्रय करने वालों को तो चुल्लु भर मालूम देता है क्योंकि आप इसके जहाज हैं न? नाथ! आप अनन्त गुण के स्थान हैं आप की स्तुति गणधर सरीखे बड़े २ महामुनि भी नहीं कर सकते तो उन के

सामने हम लोग किस गिनती में हैं जो थोड़े से अक्षरों का ज्ञान रखते हैं। इसलिये-हे देव! आप को नमस्कार है आप के अनन्त गुणों को नमस्कार है और सम्यग्-दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यकचारित्र रूप रत्न त्रय के देने वाले को नमस्कार है। विभो! आपकी स्तुति और नमस्कार का प्रतिफल तपश्चरण के साथ २ रत्नत्रय चाहते हैं क्या आप दया करेंगे? अथवा हमें आप अपने ही समान बना लीजिये फिर सम्यक्त्वादि तो सहज ही हो जावेंगे। बस, यही हमारा इच्छित है और इसी के लिये आपके सामने हाथ जोड़े हुये खड़े हैं। बाद-भगवान के कहे अनुसार धन्यकुमार और शालिभद्र आदि सब महा पुरुषों ने शाश्वत मोक्ष सुख के लिये बाह्य और अन्तरङ्ग परिग्रह का तथा मोह का मन बचन काय की शुद्धि से परित्याग किया और मोक्ष की माता जिन दीक्षा स्वीकार कर अट्ठाईस मूल गुण धारण किये। तदनन्तर पाप कर्म का निर्मूल नाश करने के लिये अपनी शक्ति प्रगट कर बारह प्रकार तप करने लगे। आलस छोड़कर द्वादशाङ्ग शास्त्र पढ़ने लगे जो अज्ञान दूर कर केवलज्ञान का कारण है। कभी पर्वतों की गुहाओं में, कभी सूने घरों में, कभी मसान में, कभी निर्जन जगह में और कभी भयंकर

वन वगेरह में अपने ध्यानाध्ययन की सिद्धि के लिये सिंह की तरह सदा निडर और सावधान रहते थे। तरह २ के आसनों के द्वारा तप करते थे। धर्मप्रचार के लिये हरेक देश पुर ग्राम दुर्ग और पर्वतादि में घूमते थे। अटवी आदि में चलते २ जहां सूर्य अस्त हो जाता था वहीं पर ध्यान करने लग जाते थे। क्योंकि जीवों की दया करना तो मुनियों का प्रधान कर्तव्य होता है न ? जब चौमासा आता, प्रचण्ड वायु चलने लगती, चारों ओर भयंकर ही भयंकर सा दिखाई देता और सर्प, बीछू, मच्छर आदि जीवों की बहुतायत हो जाती तौभी आप शरीर से मोह छोड़कर वृक्ष के नीचे ध्यान पूर्वक महा योग धारण करते। ठंड के दिनो में शीत से जले हुये वृक्षों की तरह होकर मैदान में अथवा नदी, तालाब के किनारों पर रहते और ध्यानाध्ययन करते। गरमी के दिनों में सूर्य की तेज किरणों से गरम हुई और जलती हुई अग्नि की तरह बहुत दुःसह गरम २ शिलाओं पर ध्यान रूप अमृत के पान से आत्मानन्द में लीन होकर सूर्य की ओर मुँह करके कायोत्सर्ग ध्यान धरते वह केवल कर्मों के नाश करने की इच्छा से। इसी तरह शास्त्रानुसार बहुत से कायक्लेश, अनन्त सुखमय मोक्ष की इच्छा से वे हर वक्त किया

करते। क्षुधा, तृषादि महा कठिन बाईस परीषह तथा हिंसक जीवों के द्वारा दिये हुये घोर से घोर दुःख समता भाव से सहते। आर्त रौद्रादि खोटे ध्यानों को आत्मा से हटाकर धर्म और शुक्ल ध्यान का गुहादि में बैठ कर ध्यान करते। इन्द्रियों को अपने वश करते महाव्रत की शुद्धि के लिये पच्चीस भावनाओं का, वैराग्य बढ़ाने के लिये बारह अनुप्रेक्षाओं का धर्म वृद्धि के लिये दश लक्षण धर्म का, सम्यग्दर्शन की निर्मलता के लिये तत्वों का, और मन तथा पांचो इन्द्रियों के रोकने के लिये जैन शास्त्रों का निर्विकल्प चित्त से मनन करते। इत्यादि कठिन २ योग और तप इन साधुओं ने जीवन भर पालन किया। अन्त में धन्यकुमार महामुनि ने चार प्रकार आहार तथा शरीरादि में मोह छोड़ कर अकेले ही निर्जन वन में पर्वत की तरह निश्चल खड़े होकर विधि पूर्वक सल्लेखना स्वीकार की। पहले ही क्षमादि अच्छे २ गुणों के द्वारा कषायों को घटा कर शरीर सल्लेखना करने लगे सो थोड़े ही दिनों में उपवादि के द्वारा सारा शरीर सुखा कर क्षुधादि परीषह जीती। धन्यकुमार मुनि के मुख और होठ आदि सभी सूख गये थे तो भी उन में धैर्य और मनस्विता थी। शरीर

में केवल चमड़ा और हड्डियें मात्र रह गई थीं तब भी उन का महा बल और क्षमा-शील पना बड़ा ही आश्चर्य उत्पन्न करता था। कभी बहुत सावधानी से चार आराधनाओं का आराधन करते, कभी पञ्च परमेष्ठी पद का और कभी परमात्मा का ध्यान करते। अन्त में सब सालम्ब ध्यान छोड़ कर निरालम्ब ध्यान करना आरंभ किया। इसी तरह शुभ ध्यान शुभ योग और शुभ लेश्याओं के द्वारा नव महीने तक सल्लेखना का पालन किया और अन्त में प्रायोपगमन* मरण के द्वारा ध्यान और समाधि पूर्वक प्राण छोड़ कर तप तथा धर्म के प्रभाव से सर्वार्थसिद्धि में उपपाद शिला में जन्म लेकर अन्तर्मुहूर्त्त मात्र में अतिशय सुन्दर शरीर के धारक अहमिन्द्र हो गये। वह अहमिन्द्र और जो अहमिन्द्र देव थे उनके साथ भी अनेक तरह की धार्मिक कथा करता और कभी स्फटिकमणि के बने हुये स्वभाव सुंदर अपने महलों में अथवा नन्दन बन में खेला करता। तेंतीस हजार वर्ष बाद कण्ठ में झरता हुआ अमृत उसका आहार है। और साढ़े सोलह वर्ष बाद उसे श्वासोच्छ्वास लेना पड़ता है। इसी तरह उत्तम २ सुख का उपभोग

* प्रायोपगमन मरण के वक्त किसी से अपना वैयावृत्य नहीं कराया जाता है।

करता हुआ वह अहमिन्द्र सदा सुख समुद्र डूबा रहता है। आयु की मर्यादा पूरी होने पर यही राज्यकुल में जन्म लेकर मोक्ष जायगा।

धन्यकुमार मुनि के अलावा शालिभद्रादि जितने मुनि थे वे भी जीवन भर तपश्चरण कर और अन्त में समाधि पूर्वक प्राणों का परित्याग कर अपने २ तपश्चरण के अनुसार सौधर्म स्वर्ग से लेकर सर्वार्थसिद्धि तक गये।

उपसंहार—

देखो! दुःखी, दरिद्री अकृतपुण्य केवल दान की भावना तथा थोड़े से दान के फल से धन्यकुमार हुआ और फिर तपश्चरण के द्वारा सर्वार्थसिद्धि में गया। इस लिये गृहस्थों! इस उदाहरण से तुम्हें भी दान देने की शिक्षा लेनी चाहिये।

गुणके खजाने धन्यकुमार मुनिराज धन्य हैं, उन के गुणों की मैं स्तुति करता हूं, और उन्हीं के बताये अनुसार मोक्षमार्ग का सेवन करना चाहता हूं, उन के लिये मस्तक नवा कर नमस्कार करता हूं, उन्हीं के द्वारा स्तुति होने की आशा है इसी लिये उन के गुणों का ध्यानकर अपने मनको लगाता हूं। हे धन्य! क्या मुझे भी अपनी तरह धन्य न करोगे?

धन्यकुमार मुनि का यह निर्मल चरित्र है इसे जो लोग भक्ति से पढेंगे, धर्मसभाओं में बाचेंगे अथवा सुनेंगे वे लोग उत्तम परिणामों के द्वारा उत्पन्न होने वाले धर्म के फल से स्वर्ग सुख भोगकर बाद तपश्चरण के द्वारा रत्नत्रय युक्त हो नियम से मोक्ष सुख के भोगने वाले होंगे ।

अन्तमें मेरी निर्दोष और गुणज्ञ विद्वानों से प्रार्थना है कि वे लोग थोड़े पढ़े हुये मुझ सकलकीर्ति के द्वारा केवल भक्ति से बनाये हुये इस चरित्र का संशोधन करैं।

सारे संसार के हित करने वाले अर्हंत, अनन्त सिद्ध, पञ्चाचार के पालने वाले आचार्य, अपने शिष्यलोगों को पढ़ाने वाले उपाध्याय और स्वर्ग अथवा मोक्ष के लिये उपाय करने वाले तथा कठिन २ तपश्चरण करने वाले साधु लोग मुझे मोक्ष का कारण मङ्गल प्रदान करैं मैं उनकी स्तुति वन्दना करता हूं ।

इस चरित्र के सब श्लोक मिलाकर साढ़े आठसौ होते हैं।

इति श्रीसकलकीर्ति मुनि रचित धन्यकुमार चरित्र में धन्यकुमार का सर्वार्थसिद्धि में गमन वर्णन नाम सातवां अधिकार पूर्ण हुआ ॥ ७ ॥

अनुवादक का परिचय.

(१) श्रीवैश्यवंश–अवतंस ! जिनेन्द्रभक्त !
शान्त-स्वभाव ! सब दोष कलङ्क मुक्त !
हीरादिचन्द्र शुभ नाम विराजमान
हे पूज्यपाद ! तुव पाद करों प्रनाम ॥

(२) हा तात ! पाप विधि का नहिं है ठिकाना
जो आपके अब सुदर्शन का न होना।
हा ! मन्दभाग्य मुझ को दुख में डुबोके
मा* भी हुई सुपथ गामिनि आप ही के ॥

(३) आधार तात ! नहिं है अब कोइ मेरा
हा ! और संसृति-निवास बचा घनेरा।
कैसे दुखी उदय जीवन पूर्ण होगा ?
वा कर्म के उदय को किसने न भोगा ?

जिनेन्द्र से विनय.

(४) हे देव ! देख जग में अवलम्ब हीन
आलम्ब देकर करो अघ कर्म हीन।
जो दुःख-नीर-निधि में अब छोड़ दोगे
तो दास का कठिन शाप विभो ! गहोगे ?।

शुद्धिपत्र के बावत प्रार्थना।

विशेष अशुद्धियों के न होने से अलग शुद्धिपत्र बनाना उचित न समझा किन्तु एक मोटी गलती हो गई है उसे पाठक महाशय सुधार ले। पांचवें अधिकार में होना चाहिये था "अकृत पुण्य" परन्तु दृष्टि दोष से कही तो "अकृत्य पुण्य" और कही "अकृत् पुण्य" हो गया है सो जहां २ अशुद्धि हो उसे शुद्ध कर लें।

अनुवादक.

* मा, शब्द माता और लक्ष्मी का बाचक है। हमारी माता का नाम भी लक्ष्मी था।

हमारी खास की छपी पुस्तकें

पंचमंगल—रूपचन्दकृत बंबई टाइप के छपे ... ... -)
लघुअभिषेक—जन्मपूजा तथा आरती और फूलमाल समेत ... -)॥
सम्मेदशिखर महात्म्य—पूजन सहित जवाहरलाल कृत ... ... ।)
पंचकल्याणक पूजा—भाषा बखतावरलाल कृत ... ... ।=)
नेमिचन्द्रिका—प्राचीन आसकरन कृत ... ... =)
नेमीश्वर विवाह—दो प्रकार के खेमचन्द और विनोदीलाल कृत ...)॥।
नेमिनाथ का तेरहमासा—दूसरी राजुल की बारहमासी ...)॥।
राजुल पचीसी—विनोदीलाल कृत ... ... -)
बाबुल पचीसी—और नेमिनाथ राजुल के प्रश्नोत्तर ... ... -)
समाधिमरण बड़ा—पं० सूरचन्द कृत ... ... -)
निर्वाणकाण्ड—प्राकृत और भाषा महावीरस्वामी की पूजा भी है ...)॥।
हुक्का निषेध—पं० भूदरदास कृत ... ...)।
निशिभोजन कथा—निशिभोजन निषेध की लावनी समेत ...)॥
अहिक्षेत्रविधान—(पार्श्वनाथ स्तुति) दूसरी भूदरदास कृत स्तुति ...)॥
बारह भावना—मुन्शी महताराय कृत ... ...)॥
आलोचना पाठ—कठिन शब्दों पर टिप्पणी की है ... ...)॥
फूलमाल पचीसी— " " ... ...)॥
बारहभावना संग्रह—छ कवियोंके बनाये १२ भावनाओं का संग्रह -)॥
गुर्वावली और मङ्गलाष्टक— ... ...)॥।
साधुवन्दना—बनारसीदास और भूदरदास जी कृत ... ...)॥
वैराग्य भावना—जोगीरासा ... ...)॥
शिव पचीसी और तेरह कांठिया—बनारसीदास कृत ... ...)॥
मोक्षपैड़ी— ... ... " " ... ...)॥
शारदा अष्टक— ... ...)॥
ज्ञानपचीसी और धर्मपचीसी— ... ...)॥

ऊपर की २५ पुस्तकों में से एक किस्म की ५ लेनें से ६ और १० लेने से १३ दीजावेंगी

श्रीपद्मपुराण वचनिका बड़ा ... ... ६)
श्रीहरिवंशपुराण वचनिका ... ... ५)
श्रीपार्श्वपुराण भाषा छन्द बन्ध ... ... १।)

पांडवपुराण भाषा छन्द बन्ध	२॥
प्रद्युम्नचरित्र—हिन्दी भाषानुवाद	२॥)
यशोधरचरित्र—पुष्पदंत कविकृत प्राकृत और भाषा टीका ...	२)
आराधनासार कथा कोष—(१२५ कथाओं का संग्रह) ...	३॥)
पुण्याश्रवजी—उत्तमोत्तम कथाओं का भंडार	३)
श्रीपालचरित्र—भाषा छंदबंध	१॥)
आत्मानुशासन—भाषा टीका	२)
रत्नकरंड श्रावकाचार—वचनिका	४)
धर्मसंग्रह श्रावकाचार—भाषा टीका सहित	२)
वसुनंदी श्रावकाचार—भाषा टीका समेत	॥)
भगवती आराधनासार—पं० सदासुख जी कृत वचनिका समेत ...	४)
आत्मख्याती समयसार—पं० जयचंद कृत वचनिका	४)
चारचौबीसीपाठ—एक संस्कृत और तीन भाषा के	५)
तेरहद्वीप पूजा—विधान लालजीत कवि कृत	३॥)
धर्मपरीक्षा—हिन्दी भाषानुवाद	१)
क्रियाकोष—श्रावकों की ५३ क्रियां किसनलाल कृत	१)
भजनसंग्रह—नैनसुखदास के बनाये भजनों का संग्रह	।=)
नाटकसंग्रह—मनोवती, कमलश्री, सुनतिविजय, कृपणचरित्र, ...	॥)
मनोवतीनाटक	≈)
कृपणचरित्र नाटक	≈)
कुंजविलास—भजनसंग्रह नाटक की तर्ज में	⌐)
प्रवचनसार परमागम—कविवर वृंदावन दास जी कृत ...	१)
वृंदावन विलास—उक्त कविवर की बनाई कविता का संग्रह ...	॥)
वृंदावन चौबीसी पूजा पाठ—	१)
बनारसी विलास—पण्डित बनारसीदास के जीवन चरित्र समेत ...	१॥)
सर्वार्थसिद्धि—भाषा वचनिका	४)
द्रव्यसंग्रह बड़ा—भाषा टीका	२)
द्रव्यसंग्रह छोटा - बाबू सूरजभान वकील कृत	।)

मिलने का पता—श्रीजैन भारती भवन

बनारस—सिटी.